रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

आध्यात्म विद्या का सार

(परम संत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के प्रवचन एवं फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें)

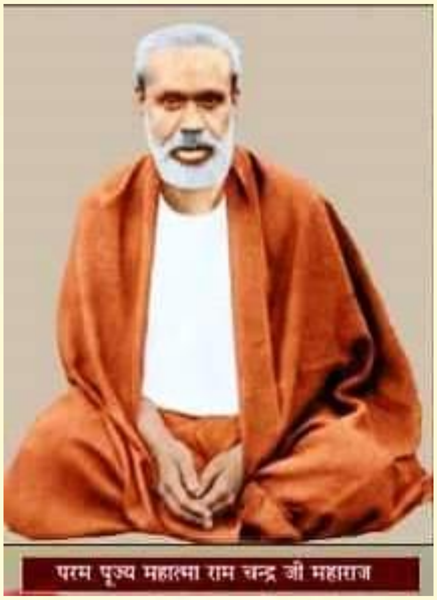
परम पूज्य महात्मा राम चन्द्र जी महाराज

रामाश्रम सत्संग (रजि।)

S-E1 297, शास्त्री नगर,

ग़ज़ियाबाद (उप्र.) 201002

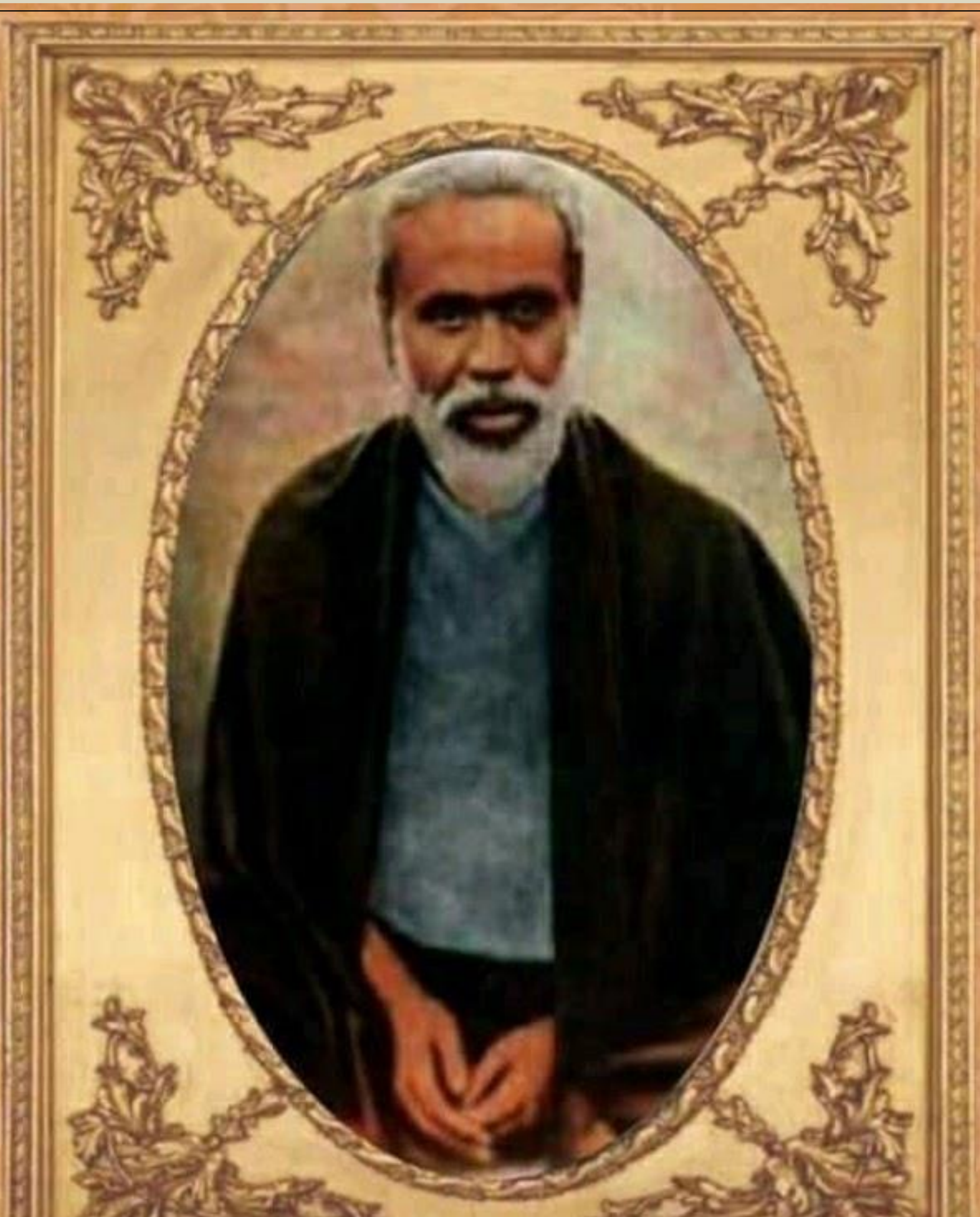

समर्थगुरू परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज़

(उर्फ लाला जी साहब)

प्रस्तावना

आदिगुरु परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज
की
अध्यात्म विद्या का सार

हमारे रामाश्रम सत्संग के अधिष्ठाता परमपूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ़ लाला जी) , फतेहगढ़ निवासी की आध्यात्मिक विद्या का सार उनके गुरुभाई व चचेरे अनुज पूज्य महात्मा कृष्ण स्वरुप साहब, जयपुर वालों ने कलमबद्ध किया था। उसी लिपिबद्ध सामग्री को क्रमबद्ध रूप से हमारे पूज्य गुरुदेव डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ने " फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें " पुस्तक में सुधार करके सरल भाषा में प्रकाशित करवाया था, जिसे रामाश्रम सत्संग के मुख-पत्र 'राम सन्देश ' में श्रंखलाबद्ध छापा गया था।

प्रस्तुत संकलन " आध्यात्म विद्या का सार " के दो खण्ड है। प्रथम खण्ड में परमपूज्य लालाजी महाराज के कुछ प्रवचनों-लेखों को लिया गया है तथा द्वितीय खण्ड में 'फ़क़ीरों की सात मन्ज़िले " का समावेश किया गया है।

आशा है इस संयुक्त संकलन को सुधी-जन उपयोगी पायेंगे।

अनुक्रमाणिका

खण्ड - ।

(प्रवचन एवं लेख)

1. संतमत के अनुसार रहनी-सहनी तथा लोक व्यवहार
2. दुनियाँ ईश्वर के खेल का रंगमंच है - इसमें हमारी ज़ात और जमात का मुक़ाम
3. रघुपति राघव राजा राम पद की आध्यात्मिक व्याख्या
4. मज़हब का मक़सद सुख है
5. रामायण का आध्यात्मिक निरूपण
6. तसव्वुर शेख़ (गुरु का ध्यान)
7. हिदायतें
8. अपनी और निहार लो, औरों से क्या काम ?
9. गौतम बुध्द के बताये पाँच मराकबों का परिचय
10. चौरासी के चक्र
11. दुखों का कारण
12. नासाग्र ध्यान
13. परमार्थ पंथ और संत मत के साधन
14. मज़हब और तहक़ीक़ात
15. मार्गदर्शक कहलाने वाले सूफ़ी व साधुओं की कसौटी
16. सिद्धान्त व शिक्षा
17. परमसन्त पूज्य महात्मा रामचन्द्र (लाला जी) महाराज की अमूल्य शिक्षा
18. महात्मा रामचन्द्र (लाला जी) महाराज के जीवन की कुछ घटनायें
19. आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज की कृपा प्रसादी
    आचार्य दिगन्त परमसन्त महात्मा रामचन्द्र (लाला जी) महाराज की शिक्षा
20. आचार्य दिगन्त परमसन्त महात्मा रामचन्द्र (लाला जी) महाराज
    के जीवन की दो-चार घटनायें
21. आचार्य दिगन्त परमसन्त महात्मा रामचन्द्र (लाला जी) महाराज
    परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज द्वारा अपने एक प्रेमी-जन को लिखा गया एक पत्र।
22. ।संसार के सुखों की वज़ाहत
23. संसार के दुखों की वज़ाहत

रामाश्रम सत्संग प्रकाशन " सन्तमत प्रवेशिका " से प्रसादी

सन्त-सद्गुरु महात्मा रामचंद्र जी महाराज (फतेहगढ़ निवासी)

सन्तमत के अनुसार रहनी सहनी तथा लोक व्यवहार

इस विषय में तीन प्रश्न स्वतः उठ खड़े होते हैं :-

(1) सन्तमत के अनुसार रहनी सहनी क्या है ?

(2) क्या सन्तमत के अनुसार रहनी सहनी अपनाये बिना काम नहीं चल सकता ?

(3) सन्तमत की रहनी सहनी अपनाने पर क्या सामाजिक व्यवहार करते रहना हानिकारक है अथवा किस सीमा तक सामजिक व्यवहार करना चाहिए ?

इसका जितना विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाय उतना ही कम है, उसका अन्त नहीं हो सकता, किन्तु यहाँ इस समय केवल कुछ चुने हुए सिद्धान्त और निचोड़ लिखे जाते हैं जो प्रायः प्रत्येक बात तथा कर्म के साथ गुंथे रहते हैं।

इनमें से सर्वप्रथम विश्वास है और वह आवश्यक है। विश्वास से तात्पर्य यह है कि ऊँचा आदर्श चुनना चाहिए। जैसा जिसका विचार होता है वैसा ही उसका फल होता है। अतः अपना लक्ष्य अथवा अपने ध्येय का चुनाव अपने दृष्टिकोण से ऊँचा रख कर करना चाहिए। उदाहरण से इसको इस प्रकार समझिये। सन्तमत को छोड़कर अन्य मतों का यह लक्ष्य है कि मनुष्य को अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा उठकर पारब्रह्म में लय हो जाना चाहिए और इसके लिए वह आजीवन प्रयत्न किया करते हैं। सन्तमत के अनुयायी भी इससे सहमत हैं कि नीचे के स्थानों से उन्नति करके पारब्रह्म का सामीप्य प्राप्त करें अथवा उसमें लय हो जावें, किन्तु उनका यह भी कहना है कि केवल इतने से ही काम नहीं चलेगा और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। अतः पारब्रह्म के स्थान से आरम्भ करके सतपद के स्थान तक पहुँचने का निश्चय बाँधते हैं और उसी के अनुसार प्रयत्न भी करते हैं। उनका विश्वास है कि मध्य की स्थितियों को पार करना होगा। अतः देवताओं, शक्तियों आदि का सामीप्य भी होगा तथा उनमें लय होने की अवस्था भी आएगी। किन्तु उनसे पार जाने का ध्यान रखना चाहिए और उनके लिए प्रयत्न जारी रखने चाहिए ।

लोक व्यवहार में सत से काम लेते हैं। चूँकि यह जगत सत और असत की मिलौनी है अतः असत से काम निकालकर उसमें मन नहीं लगाते। जब आवश्यकता पड़ती है उससे काम निकालकर अलग हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे लघुशंका और शौच के लिए अवश्य जाना पड़ता है।

अपना स्वभाव और रहनी सहनी ऐसी नहीं बनाते जिसके कारण इस संसार को छोड़ते समय दुःख हो और प्राण अटक कर रह जायें। प्रकट और अप्रकट रूप से सदा आपको ऐसे कार्य करते रहने का आदी बना लेते हैं जिससे स्वयं को कोई दैहिक, चारित्रिक तथा आत्मिक कष्ट न हो। दूसरों को अपने मन, वचन और कर्म से कोई शारीरिक, चारित्रिक तथा आत्मिक कष्ट नहीं पहुँचाते और न कोई ऐसा व्यवहार करते हैं जिससे इस प्रकार के कष्टों को पहुँचने की सम्भावना हो। उनके सामजिक व्यवहार भी ऐसे शोधे हुए होते हैं जिनसे किसी प्रकार के समाज को ज्ञान तथा अभ्यास सम्बन्धी मौखिक अथवा लिखित आपत्ति न हो। उच्च आदर्श होने के कारण नीचे के सब स्थानों पर उनका अधिकार होता है और सब की वास्तविकता का ज्ञान होने के कारण उन्हें किसी से द्वेषभाव नहीं रहता और न कट्टरपन। अतः अपने को किसी से न्यारा नहीं मानते। उनमें दोष देख कर भी उनसे घृणा नहीं करते, वरन सच्ची नियत और सच्चे इरादे से उनकी भलाई चाहते हैं। इस विचार से कि प्रत्येक को चित्त की शान्ति प्राप्त हो, वे अपनी दया और सहानुभूति द्वारा सब के दृष्टिकोण को ऊँचा कर देने का प्रयत्न करते रहते हैं।

उनके मत में चमत्कार अनिवार्य नहीं है, वे क़यामत से बख़्शवाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेते, न सांसारिक कामों में सफलता का वचन देते हैं, न वे गंडे तावीज़ बनाते हैं और न अपनी दुआ से मुक़दमें जितवाते हैं, न व्यवसाय में उन्नति कराते हैं, न झाड़ा-फूँकी द्वारा रोग दूर करते हैं और न भविष्य की बातें बतलाया करते हैं। न वे अपना प्रभाव दूसरों में इस प्रकार प्रवेश करते हैं कि शिष्य को कुछ करना न पड़े, उसकी स्वतः उन्नति होती जाय, उसके सब पाप क्षमा कर दिए जायें, उसे पाप का विचार तक न छू जाय, उसके उपासना सम्बन्धी सब कार्य स्वतः होते जायें और उसे निश्चय भी न करना पड़े। न कोई ऐसी आन्तरिक स्थिति उत्पन्न होने की कोई अवधि निश्चित है कि हर समय उपासना में आनन्द से भरपूर रहें, पूजा करते समय इधर-उधर के विचार तथा कोई बाधा न आये, खूब रोना आये, ऐसा

ध्यानमग्न हो जाय कि अपने पराये की सुध न रहे, जप और ध्यान करते समय ईश्वरीय प्रकाश दिखाई दे, अनहद नाद सुनाई दे। न सुन्दर स्वप्न दिखाई देना आवश्यक है और न आन्तरिक अनुभवों का सत्य होना आवश्यक है।

कहने का मतलब यह नहीं है कि यह सब दावे किये जायें, वरन यह प्रभु की इच्छा पर निर्भर है कि यदि उसे स्वीकार हो तो ऐसा हो जायगा। वास्तविक लक्ष्य तो परमात्मा को प्रसन्न रखना है और उसकी प्रसन्नता इसमें है कि जहाँ तक सम्भव हो धर्मशास्त्र के अनुकूल चलना चाहिए।

धर्मशास्त्र के कुछ वाह्य नियम हैं - जैसे संध्या, उपासना, व्रत, तीर्थ, पर्यटन, दान, विवाह, स्त्री, पुत्रादि, भाई-बहिन, कुटुम्बी, मित्र, माता-पिता, पड़ोसी आदि के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना, लेन - देन और व्यवहार, मुक़दमों की पैरवी, गवाही देना, वसीयत, मृत्यु के उपरान्त अपनी संपत्ति का बटवारा करना, बोल-चाल, खान-पान, सोना, यात्रा करना, आदि बातें वाह्य नियमों से सम्बन्धित हैं। ईश्वर प्रेम, उसका भय, उसकी याद, संसार से प्रीति कम करना, प्रभु की इच्छा के अनुकूल रहना, द्वेष न करना, उपासना में जागरूक रहना, परमार्थ के कामों में चाव, किसी को तुच्छ न समझना, स्वार्थी न होना, क्रोध को वश में करना, आदि बातें आन्तरिक नियमों में आती हैं जिन्हें सूफ़ी भाषा में 'सलूक' कहते हैं।

आन्तरिक दोषों के उत्पन्न हो जाने से उसका प्रभाव बाहर प्रकट होने लगता है जैसे ईश्वर के प्रेम में कमी आ जाय तो उपासना में सुस्ती होने लगती है, प्रार्थना और नुमाज़ जल्दी- जल्दी बिना क़ायदे के पढ़ लेते हैं, कंजूसी के कारण दान करने या तीर्थाटन करने की वृत्ति में कमी हो जाती है, अहंकार और क्रोध के कारण किसी के साथ अन्याय हो जाता है, हक़दारों का हक़ नहीं मिलता।

यदि प्रत्यक्ष कर्मों में सावधानी भी बरती जाय तो भी जब तक मन शुद्ध नहीं होता वह सावधानी थोड़े दिनों ही चलती है। अतः इन दो कारणों से मन की शुद्धी आवश्यक है। किन्तु यह आन्तरिक दोष तनिक कम समझ में आते हैं और जो समझ में आ जाते हैं उनके सुधार का उपाय कम मालूम होता

है, यदि मालूम भी हो तो खेंचा-खेंची से उस सुधार की कार्यवाही कठिनतापूर्वक होती है। अतः पूर्ण गुरु की आवश्यकता होती है कि वह इन बातों को समझकर सावधान करता है तथा उनका इलाज और उपाय बतलाता है। मन के सुधार के लिए योग्यता पैदा हो जाय और ऐसी शक्ति आ जाय जिससे मन वश में होने लगे इसके लिए वह कुछ अभ्यास, मनन और ध्यान की शिक्षा देता है। पूर्ण गुरु की शरण में आकर जिज्ञासु को मुख्यतः दो काम करने होते हैं। गुरु के सम्पर्क में आकर उसकी अनुमति और आज्ञा से अभ्यास सीखने से पूर्व पूर्ण विश्वास तथा दृढ़ मनोवल उत्पन्न करना पहला काम है। दूसरा काम यह है कि गुरु धारण कर लेने के पश्चात उनके आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करना, दृढ़प्रतिज्ञ रहना और अपनी दशा स्पष्ट रूप से गुरु को सूचित करते रहना।

अब यह प्रश्न आता है कि क्या सन्तमत के अनुसार रहनी सहनी अपनाये बिना काम नहीं चल सकता ? इसका उत्तर यह है जो उदाहरण देकर समझाया जाता है। मनुष्य के स्थूल शरीर के रोग तो वैद्य, हक़ीम, डाक्टर आदि के इलाज से दूर हो जाते हैं और सदाचार सम्बन्धी तथा आत्मिक रोगों का उपचार सन्तों के पास है। डाक्टर ने कोई औषधि दी जो पाँच रुपये की एक मात्रा हो और आदेश दिया कि शीशी की डाट भली भाँति लगाए रखना जिससे औषधि का मूल तत्व उड़ने न पावे, औषधि पीने से पूर्व शीशी को खूब अच्छी तरह हिला लेना, उसको ठंडी जगह पर रखना, उसको गर्मी न पहुँचे, दिन में तीन मात्रायें भोजन से पूर्व लेनी हैं, और भोजन में सागूदाना, खिचड़ी, मूंग की दाल और दूध प्रयोग करना है। अब यदि रोगी शीशी की डाट खुली छोड़ दे, ठंडक में रखने के बजाय उसे धूप में या चूल्हे के पास रख दे, पीने से पहले शीशी को हिलाये नहीं, एक बार में दो बार दवा एक साथ पी जाए और तीसरी मात्रा पीना भूल जाये, या जैसे कि बहुत से रोगियों की आदत होती है कि औषधि को जानबूझ कर फेंक देते हैं और जितना अधिक उनको समझाओ उतना ही उल्टा करते हैं, भोजन में जैसा पथ्य बताया गया है उसकी अपेक्षा माँस, घुइयाँ, सोहन हलवा आदि जैसी वस्तुएं प्रयोग करें तो उस औषधि का क्या परिणाम होगा, इसका आप स्वयं अनुमान लगा सकते है।

दूसरा उदाहरण है कि आप एक अत्यन्त कोमल पौधा लगायें और उसमें खाद उसकी प्रकृति के अनुकूल न डालें, पानी कभी न दें और न पशुओं से उसकी रक्षा करें तो उस पौधे का क्या हाल होगा ?

तीसरा उदाहरण सुनिए। आप गुलाब का बहुत बढ़िया अर्क़ जो सबसे अधिक क़ीमत का हो मँगवायें और शीशी को खुला हुआ अलमारी के नीचे के ख़ाने में रख दें और ऊपर के ख़ाने में मिट्टी के तेल का एक ऐसा पात्र रख दें जो टूटा हुआ हो और रिसता हो और जिसका तेल टपक-टपक कर शीशी में गिरे तो फ़िर उस गुलाब के अर्क़ का क्या हाल होगा ? इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण हो सकते हैं।

इसी तरह आप चाहे कितना ही अभ्यास, मनन, जप आदि करें किन्तु यदि स्थूल शरीर से सम्बन्धित जितने आदेश हैं उन सब का पूर्णतया नियमानुसार पालन नहीं करेंगे तो लाभ नहीं होगा।

सम्भव है कि आप यह चाहते हों कि अभ्यास तो करें सन्तमत का और अपनी रहनी-सहनी रखें वर्तमान स्वरुप के अनुरूप जो बहुत गिरी हुई दशा में है। इस प्रश्न का उत्तर आप स्वयं दे सकते हैं। हाँ, ऐसे व्यवहार जैसे विवाह, रिश्तेदारी, रीति-रिवाज़ आदि, वर्तमान समाज के अनुरुप कर सकते हैं जिससे सन्तमत के मूल सिद्धांतों को ठेस न पहुँचे और धर्म का लोप न हो जाय। आजकल मामूली मोटी-मोटी बातें जो रीति-रिवाज़ में सम्मिलित हो गयी हैं, बुरी नहीं समझी जाती हैं, किन्तु उनसे वास्तव में धर्म की नींव को ठेस पहुँचती है। उधारणतयः नशीली वस्तुएँ खुल्लमखुल्ला या छिपे तौर से प्रयोग करना, जुआ खेलना, बाज़ारी स्त्रियों से सम्बन्ध रखना, इत्यादि। यह बातें ऐसी नहीं हैं जो बहुत बारीक हों और समझ में न आ सकें। पहले इन बातों से आपको बचना चाहिए, उसके पश्चात् बारीक बातें भी ज्ञात हो जाएँगी।

दुनियाँ ईश्वर के खेल का रंगमंच है - इसमें हमारी ज़ात और जमात का मुक़ाम

महात्मा रामचंद्र जी महाराज ने एक जगह लिखा है - " हे परमपिता परमात्मा ! यह सेवक जैसा है तैसा आपकी शरण में मौजूद है। इसको ख़बर नहीं कि आपके गुण कैसे गाये जावें। कभी-कभी अपनी बाख़बरी पर नाज़ (सचेत दशा पर गर्व) हो जाता है लेकिन जब काम का वक़्त आता है, तो यह सब धरे का धरे रह जाता है। अब तक छान-बीन करने का नतीज़ा यह निकला और यह जान पाया कि - " कुछ नहीं जाना "।

"दुनियाँ के हर हिस्से में इल्म (विद्या) का शोर मचा हुआ है। लाखों- करोड़ों किताबें लाइब्रेरिओं में भरी पड़ी हैं। हज़ारों अख़बार और रिसाले हर मुल्क के कोनों से रोज़ाना, हफ्तेबार और माहवारी निकल रहे हैं। हर ख़ास और आम की नज़रों में समाकर, ज़बानों पर चढ़कर, ज़हनों (मस्तिष्क) में उतर जाते हैं और कुछ रोज़ हाफिज़े (स्मरण) की कोठरीओं में बन्द रहकर फिर न जाने कहाँ से कहाँ चले जाते है, कि याद करने पर भी याद नहीं आते और अगर याद आ भी जायें तो बे सिर-पैर के, किसी काम के नहीं, कहाँ से आते हैं और कहाँ ग़ायब हो जाते हैं ? क्या यह सब आपके नाम और रूप के नज़्ज़ारे तो नहीं हैं जो आपके ज्ञान के समुद्र से लहरों की शक्ल में उठते और फिर लुप्त हो जाते हैं ? "

" ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश, अन्धकार , विद्या-अविद्या, जड़, चैतन्य, मौत, ज़िन्दगी, ताक़त, कमज़ोरी, वगैरा -वगैरा - ये सबके सब आपकी माया के खेल तमाशे हैं। दुनियाँ एक तमाशे की जगह - रंगमंच है। सब लोग एक्टर, यानि अभिनेता हैं और आपस में एक दूसरे का खेल देखने वाले हैं। कुछ लोग खेल खेल रहे हैं, तो कुछ उन खेलों को देख रहें हैं और कुछ इन खेले हुए खेलों की नक़ल उतारने में बदमस्त (संलग्न) हैं । बहुत सी तादाद (संख्या) लोगों के इन नक़ली खेलों को देखकर ऐसी मस्त और महब (तल्लीन) हैं कि उनके आनन्द का ठिकाना नही। यह चक्र ऐसा घूम रहा है कि न मालूम

कब ख़त्म होगा ? मुमकिन है कि महाप्रलय या क़यामते कुब्रा इस चक्र की आख़िरी हरक़त या ठहराव के दिन का नाम हो। "

" जो इस संसार से चले गए, सब मुक्त हस्तियाँ अपना-अपना खेल दिखा कर और थक-थका कर एक कौने में बैठीं हैं और ऐसे ख़ामोश और छुप कर बैठे हैं कि लौटकर ख़बर तक न ली, ऐसे गुमनाम हुए कि किसी का नामोनिशान तक बाकी नही। क्या हुआ अगर उँगलियों पर गिने-गिनाये महापुरुष, ऋषि-मुनि, पीर-पैग़म्बर, अवतार-औलिया,अपने-अपने कारनामों या हिदायतों (कृतियों - उपदेशों) के नाम और रूप में अब तक याद करने वालों को अपनी झलक दिखा देते है। उनका साया रुपी नाम और रूप जब तक कि ईश्वरीय प्रकाश बाकी है, क़ायम रहेगा। पर साया तो साया ही है। नक़ल की हैसियत और उम्र भला कितनी ? "

" ऐ परमात्मा ! ये बन्दा भी ऐसी हस्तियों की कितनी नक़लों की नक़ल और असलियत के किसी मुक़ाम की असल का साया और परमात्मा की सिफ़ात का मजमुआ (गुणों का समूह) आपकर मुक़र्रर किये हुए नियमों के अनुसार पार्ट अदा कर रहा है। आप सबके हृदय की जानने वाले हैं इसलिए आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप ख़ुद ही फैसला कर लें कि सेवक का खेल कितना असली है और कितना नक़ली, और अगर नक़ली है तो हस्ती की किस असल की नक़ल। मुझको पक्का विश्वास है कि आपकी दया और कृपा की लहरों और मौंजो ने आपसे दूर पड़े हुए शरीर को चारों तरफ़ से इस दुनियाँ में पहले ही दिन से ढाँप रखा था और सबसे पहले हिदायत (आदेश) की रौशनी मुझ पर मेरी परमभक्त माता की पवित्र गोद में डाली गयी, जिस प्रकाश की हरारत (गरमी) ने सात वर्ष तक पाला पोसा।"

" हे परमदयालु ! आपके रहम (दया) ने मुझको बहुत दिनों तक बे हिदायत नहीं छोड़ा बल्कि उम्र के उन्नीसवें साल में एक मुबारिक दिन ऐसा हुआ कि तमाम हस्ती को हमेशा के लिए एक मुजस्सिम रहीम (मूर्तिमान दयालु) पंथ के दिखलाने वाले, ज्ञान और विज्ञान के दीपक के सुपुर्द कर दिया। इस सच्चे रास्ते को दिखलाने वाले ने पहले ही दिन मेरे कान में फूंक दिया कि तेरी हस्ती पहले ही

दिन से असलियत की तरफ़ मायल (झुकी हुई) है। इसलिए तू अपने आपको यानी असल को असल करके दिखला। नकल तो असल की कर और नक़ल की नक़ल इस तरह कर कि नक़ल या साये को औज़ार (हथियार) बना। स्वांग रचने में माया की मदद ले और सहारा ज़ाते मुतलक़ (सर्वेश्वर) का ले।”

" मेरे रहनुमा (पथ प्रदर्शक) ने ऐसा इशारा देकर मुझको सिर्फ़ मेरे ऊपर ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि ख़ुद साये (छाया) की तरह हर वक्त साथ रहकर, सोलह बरस तक अपनी ख़ास तवज्जह - ज़ाहिरी और अन्दरूनी - से मेरी निगाहेदाश्त फ़रमाई (अर्थात प्रकट व अप्रत्यक्ष विशेष कृपा की चौकसी की)। पंथ के बाहरी आडम्बरों से अलहदा रहने के लिए हमेशा हिदायत फ़रमाई और आख़िरकार अपने रंग में रंग-रंगा कर यह हुक्म फ़रमाया कि हमारा मिशन जिस तरह और जहां तक हो सके दुनियाँ के लोगों तक पहुंचाया जाए । “

" आपकी मंशा यह थी कि गिरे हुए जीवों और भूले भटके संसारियों को उभारा जाए और उनकी हालत को संभाला जाये। आपका फ़रमान यह था कि जब तक लोगों की अन्दरूनी (आन्तरिक) हालत न सम्भलेगी, उनकी भीतरी शक्तियों का उभार होकर वे जाग न जाएँगी और मन की ताक़तें फिर से नशवोनुमा (वकासित) न होंगी और न फूलें फलेंगी, बुद्धि तेज़ होकर शुद्ध न होगी और सच्चा ज्ञान प्राप्त न होगा उस वक्त तक ख़ाली पूजा-पाठ और ऊपरी उपासना से काम न चलेगा और जीव जैसे इस हाल में बंधे हुए हैं वैसे ही फंसे रहेंगे ।

" इसलिए आपने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि जहाँ तक बन सके अन्दर का अभ्यास किया और कराया जाए और इसके साथ सब धर्म सम्बन्धी उसूलों (नियमों) की पाबंदी की जाए। यम-नियम, जायज़ और नाजायज़ तरीक़ों और अमलों, धर्म-अधर्म के व्यवहारों पर पूरा ख़्याल रखा जाये जिससे इख़लाक़ (चरित्र) सुधर । स्वाध्याय से मौक़ा -ब-मौक़ा फ़ायदा उठाया जाये अन्तर

का अभ्यास करने वालों का सत्संग किया जाये तभी ज़ाहिरी और अंदरूनी (आंतरिक) तरक़्क़ी मुमकिन है।

" इसके खिलाफ़ (विपरीत) अगर दुनियाँ के उन पन्थाइयों की रीस (नक़ल) उतारी जायगी और अमल करेंगें जो मह्ज़ तितली बनकर किताबें पढ़ लेते हैं या बुज़ुर्गों, महापुरुषों का हाल सुनकर अपने दिल का इत्मीनान हासिल कर लेते हैं और अंदरूनी (आंतरिक) अभ्यास कुछ नहीं करते, उनका अभ्यास सिर्फ़ थोड़ी देर किताबों का पाठ करना और भजन कीर्तन करके शब्दों को गाकर, अपनी तबियत को बहलाना है, तो फिर जिसका काम असली मक़सद (ध्येय) तक पहुँचना है, कोसों दूर हो जायेगा।

" आपके हुक्म और उसूलों की पाबन्दी का हमेशा ख्याल रखा गया और यही वजह है कि हमारे प्रेमियों की तादाद बहुत थोड़ी है। दुनियाँ के लोग चाटक-नाटक, ऊपरी खेल-तमाशों और माया की झलक के भूंखे हैं। उनके लिए सिर्फ़ भीतरी अभ्यास एक भारी बोझ है। अपनी पुरानी आदतों को तब्दील करके धर्म सम्बन्धी इख़लाक़ पर आ जाना बहुत ही बोझिल काम हो गया है, भागने और मुंह छिपाने की कोशिश करते हैं। कितने ही भाग गए और न जाने कौन - कौन भागने को तैयार हैं।

" हमारी थोड़ी सी तादाद (संख्या) जो अब तक क़ायम नज़र आती है किस क़दर शानदार और वज़नी है, इसका मुक़ाबला दूसरी जमात (संस्था) के सदस्यों से वो ही साहब कर सकते हैं जो अहले नज़र (परमार्थ दृष्टि संपन्न) और इस मार्ग के सन्तों की सौहबत उठाये हुए हैं। यही वजह है कि इतनी मुद्दत में भी यह जमात कोई नुमाया और नामवर जमात (प्रसिद्ध संस्था) नहीं बन सकी। न इसका कोई ज़ाहिरा वजूद (अस्तित्व) है, न कोई ईमारत, न कोई तहरीरी उसूल (लिखित नियम) और न कोई फण्ड है।

यही वजह है कि इबददायी उसूल (प्राम्भिक नियमों) और मंशा के ख़िलाफ़ जहाँ तक भी हो सका अमल दरामद करने की जुर्रत (चेष्टा) नहीं की गयी है और अपनी इस जमात यानी संगत को (बाद में पूज्य लालाजी महाराज द्वारा स्वयं संस्थापित रामाश्रम सत्संग को) हमेशा माया और मायावी झगड़ों से अलहदा रखा गया है।

राम सन्देश : सितम्बर-अक्टूबर , **2003**

रघुपति राघब राजा राम

(परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज द्वारा की गयी इस पद की आध्यात्मिक व्याख्या)

" रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम " - इस पद का सीधा मतलब सब जानते है। लेकिन अगर हम इस छोटे से पद के हर शब्द के अन्दर घुस कर देखें तो इसके अन्तर्गत एक बहुत ही गहरा तत्व-ज्ञान से भरा अर्थ छिपा हुआ पायेंगे, जो आँखों को चकाचौंध कर देगा।

सब जानते हैं कि दुनियाँ और उसके अन्दर सब जीव-जन्तुओं का पालन-पोषण और जिन्दा रखने वाली केवल एक चीज़ 'चैतन्यता' है जो रचना की हर रग में छिपी हुई दो तरह से काम कर रही है। यदि यह न हो तो कोई जीव ज़िन्दा नहीं रह सकता। श्रष्टि की रचना के सम्बन्ध में उस परम परमेश्वर (कुल्ल मालिक) से जो सबका आधार है, एक धार साये (परछाई) के रूप में निकलती है। हम इस धार को चैतन्यता की धार कह सकते है। यह धार दो तरह से नीचे उतरती है - नाम और रूप के द्वारा। इस समय मैं रूप को लेकर बातचीत करूँगा, वरना विषय बहुत लम्बा हो जायेगा। इसलिए केवल रूप को लेकर इसकी सच्चाई को समझाने की कोशिश करता हूँ।

रौशनी या ताप नीचे दिये हुए दो रूपों में स्थित होता है। रौशनी, प्रकाश व प्रकाश की किरणें एक तरफ और गरमी, हरारत, ताकत व शक्ति दूसरी तरफ। विवेक शक्ति, विकास, समझ, ज्ञान व बुद्धि गरमी व ताक़त वग़ैरा सब मिलमिलाकर हर जीव जन्तु में काम करती हुई नज़र आ रही है। अगर ऐसा नहीं है तो यह शरीर मुर्दा है। अब इस ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ी हस्ती सूर्य को माना गया है जो रौशनी और गरमी का भण्डार है। इसके समझाने बुझाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इसे सभी जानते है। पैदा हुई हर चीज़ में रौशनी और गरमी सूरज के द्वारा ही आती है। इसके विरुद्ध अन्धकार और शीतलता चाँद के अन्दर है। रचना में सबसे उत्तम पैदाईश इन्सान की है और इन्सानों में भी जो सबसे अधिक शक्तिशाली और

बुद्धिमान है वह राजा है। क्षत्रिय धर्म के लिए केवल शक्ति और बुध्दि की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ राजा ज्ञानी भी हो और ज्ञान भी सच्चा हो।

इतनी भूमिका के बाद अब असली ध्येय पर आता हूँ। 'रघु' दरअसल प्रकाश-रौशनी की किरण - ज्ञान, बुद्धि व समझ को कहते है। क्षत्रिय वंश के राजा जो सूर्यवंशी कुल में हुए वह प्रकाश और ज्ञान यानी सच्चे ज्ञान होने की वजह से सूर्यवंशी कहलाये और इन्हीं गुणों की वजह से राजा राघव के नाम से प्रसिद्ध हुए। वह रघुपति थे यानी उनका व्यक्तित्व केवल सूर्य की तरह प्रकाशमान और शक्तिशाली ही नहीं था बल्कि उन्होंने अपना गहरा सम्बन्ध ब्रह्म विद्या से कर लिया था जिसके कारण वे इसके अधिकारी कहलाये। ' 'राघव' ज्ञान व शक्ति का वह पूर्ण स्वरुप है जो न केवल प्रकाश, शक्ति व सच्चे ज्ञान की वास्तविकता को जानता है बल्कि जानकर बाकायदा उनसे काम ले सकता है। किसी गुण को हासिल करके एक तरफ बैठ जाना पूर्णता नहीं है बल्कि उसको काम में लाना और दूसरों की मदद करना और गिरे हुए को उठाना मनुष्य की पूर्णता है - श्रष्टि की गरज़ यानी ' एकोहम भवस्यामः ' जो उत्पत्ति की मंशा है, इसको पूरा करता है। पूर्ण इन्सान की इन्द्रियाँ व अन्तःकरण के सब अंगों का विकास होकर सम अवस्था में आना ही परम लक्ष्य है। **(this is perfection of life)**। राजा वही हो सकता है जो देश के सब ज्ञानियों से श्रेष्ट्र हो और उसकी इच्छाशक्ति सब पर छा जाये और ऐसे शक्तिशाली राजा को राजा राम जब कहेंगे जब ब्रह्माण्ड का कण -कण भी उसके दिव्य तेज से ख़ाली न हो। उसकी शक्ति हर जगह काम करती है। बिना इस शक्ति के सब काम बन्द हो जायेंगे। ऐसी सर्वव्यापी हस्ती का नाम ही राजा राम है जो रग-रग में रमा हुआ अपना खेल खेल रहा है। पतित पापी को कहते है। पाप अन्धकार है और प्रकाश के आते ही अन्धकार जाता रहता है। कालिम पुरुष संत सद्गुरु के सत्संग में जाते ही पाप की ताक़त कमज़ोर पड़ जाती है और ख़त्म हो जाती है। बस ऐसी हस्ती जो पापों को अपने अन्दर खैंच ले - हैवान से इन्सान बना दे, पतित पवन कहलाती है। अब विचार कीजिये ऐसा पतित पावन कौन हो सकता है ? उत्तर यही होगा कि जिसमें ऐसी शक्ति हो जो पहाड़ को भी हिला दे, जिसमें सच्चा ईश्वरीय प्रेम

झलकता हो, और जिसका दिव्य तेज घने से घने अन्धकार को दूर कर दे। यह है राजा राम का स्वरूप जो स्वयं प्रकाशवान है और शक्ति का पूर्ण रूप है और उनके साथ उनकी मददगार सीता यानी शक्ति - अटल-दृढ़ इच्छाशक्ति है। बस हम इसी पूर्ण दिव्य ज्योतिर्मय राम और उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति सीताजी, यानी मौज़ूदा गुरु महाराज की पवित्र हस्ती को नमस्कार करते है।

मज़हब का मक़सद सुख है

मज़हब का मक़सद यह है कि इन्सान को सुख प्राप्त हो, और वह सुख भी इस क़िस्म का सुख हो, जो ख़ुद इख़्तियारी, सबसे बढ़कर और हमेशा का हो। सुख की खाव्हिश करना ज़िन्दगी का खास्सा है। कोई मख़लूक़ ऐसा नज़र न आवेगा, जो सुख न चाहता हो। मिलना, जुलना, मिलकर काम करना, मौक़ा महल वग़ैरह को देखकर ज़रुरतन उमदन और मस्लहतन, नाख़ुशगवार हालत से बचने की कोशिश में रहना, यह सब क्यों है, महज़ सुख के लिए है। कोई दुखी होना नहीं चाहता, सब सुख के ख़्वाहिशमन्द हैं और मज़हब इनके इस मक़सद को पूरा करने का यक़ीनी और बेहतरीन ज़रिया है। मज़हब से बेहतर और किसी से इस गर्ज़ की पूरी पूरी तफसील नहीं हो सकती। सुख क्या है ? सुख का असली स्वरुप आज़ादी है।जब तक कि कोई बिलकुल आज़ाद न हो जावे वह सुखी नहीं हो सकता, सुख की मुक़म्मिल सूरत का आम फ़हम नाम हमारी दानिशत में आज़ादी है। आप कहेंगे क्या हम आज़ाद नहीं हैं, घर की चीज़ों के पाने से सुखी हो जाते है। इसे क्या कहोगे, क्या यह सुख नहीं है ? इसका जबाब यह है कि निस्वती नुक़्ते निगाह से तब तक किसी शै को पाकर तुम खुश हो जाते हो क्योंकि किसी चीज़ का पाना उसको कब्जे में आना निस्वती आज़ादी की एक शकल है मगर यह हालत एक आरजी और चन्द लमहे की होती है क्योंकि इसका तअल्लुक शै मरग़ूब के साथ किसी तरह देरपा नहीं हो सकता और चूँकि रुह में फ़ितरतन आज़ादी का ख़्याल मौजूद है यह ज़्यादा दिनों तक इस बात का गवारा ही नहीं कर सकती कि वह खव्वाह उसकी ख़ुशी कहिये लेकिन दूसरी चीज़ के मातहत हो क्योंकि जब दो चीज़ें हो सकती हैं तो जिस तरह इनका मिलाप हुआ है उसी तरह उनकी जुदाई का भी इम्कान रहेगा। जो मिलता है वह बिछुड़ता भी है। और जो हाथ आता है वह हाथ से जल्द ही जाता है, जो पैदा होता है वह मरता है, जो बनता है वह बिगड़ता है। यह अम्र मुसल्लिमा है। इसलिए जिसने अपनी ख़ुशी या सुख को किसी दूसरे के मुहताज बना रखा है वह ग़लती में पड़ा हुआ है और मज़ाविलान और

मसावात होने पर उसको ख़ुद व ख़ुद इस हालत से नफ़रत होगी और वह आप इससे जुदा होकर दूसरी तरह पर इससे ज़्यादा देर या अमली और अच्छे सुख की ख्वाहिश करेगा। जो अगर बिलकुल नहीं तब भी किसी क़दर रस के रूप से मुशावह होगा, इसके बाद वह आहिस्ता-आहिस्ता उस वक्त तक चैन न मिलेगा, जब तक पूरी आज़ादी हासिल न कर लेगा। जिसमें और जिस आज़ादी में उसके सिवा और कोई नहीं है और वह ही सुख है। पस सुख इसका ज़ानवि स्वरूप है। यह ही स्वरूप इसके मुक़्क़मिल सुख का भण्डार है मगर किसी भ्रम की वजह से वह भूल जाता है। और और वग़ैरह वग़ैरह चीज़ों में सुख तलाश करता रहा, मगर जैसे जैसे तज़रबे होते गए, वैसे ही वह वतदरीज तरक़्क़ी करता हुआ अपनी ज़ात में दाखिल हो गया, और पूर्ण रीति से सुख को प्राप्त हो गया, यह भ्रम एक तरह के पर्दे थे जो इस पर आ गए थे और तारी हो गए थे, इनकी वजह से वह वावले की तरह इधर उधर भटकता रहा, कभी इस तरफ़ रुजूअ हुआ कभी उस तरफ़। मज़हब इन पर्दों को हटाने का इहत्माम करता है ताकि यह पर्दे हट जाएँ और इन्सान को अपना रूप हासिल होता जाय। जब इसको अपना रूप मिल जाता है, वह आज़ाद हो जाता है, यह ही आज़ादी इसका सुख है और मुक़्क़मिल सुख है। मज़हब इसके हासिल करने का ज़रिया और साधन वग़ैरह है और इसी साधन का मक़सद सुख है।

============

राम सन्देश : मई-जून, 2012

रामायण का आध्यात्मिक निरूपण

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी (लालाजी) महाराज)

दशरथ रूपी शरीर ने भोग विलास कर लिए, अब उम्र ज़्यादा हो गयी, उससे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न - चार औलाद (मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त) पैदा हुए। ज़िन्दगी के तजुरबे में इनका पैदा होना लाज़िमी (अनिवार्य) था। विश्वामित्र रूपी नेकी की वृत्ति ने उसके साथ रहकर ताड़का और मारीच नफ़सानियत के ज़ज़बात को यज्ञ में यानी दिल के ग़ौर व फ़िक्र के साथ दूर हटाकर इसी मन को शिव के धनुष्य - यज्ञशाला यानी शिव नेत्र के मुक़ाम में पहुँचकर शिव का धनुष्य तुड़वा दिया और सीता रूपी सत की वृत्ति उसको दिलवाकर परशुराम रूपी उथली भक्ति को परे हटाया और सूक्ष्म भक्ति का ज्ञान बख़्शा। मन रूपी राम उस सती सीता के साथ दशरथ (यानी शरीर) के महल में रहने लगे। दशरथ चाहता है कि राम से जिस्मानी व्यवहार का काम लें - मगर वो (राम) यह देवकारज करना चाहते थे - यानी उनको अज्ञान रूपी रावण के नाश का ख़्याल था। देवी-देवता जो मन की शुद्ध और शुभ वृत्तियाँ हैं - उनमें से एक सरस्वती, मन्थरा की जुबान पर आ बैठी जिसने इस शरीर की तामसी वृत्ति कैकयी को बरगलाया।

मन्थरा - संस्कृत लफ्ज़ माद्दा, मंथर, ख्वाह, मंथ से निकला है, जिसके माने भड़कने के हैं। यह तामस की भड़कने वाली वृत्ति है। जब तक तमोगुण को हरकत नहीं दी जाती - तब तक किसी हालत में भी यह मन कर्म करने के क़ाबिल नहीं होता। हरकत यहाँ से चलती है। इसलिए जब शरीर की तमोगुणी वृत्ति को भड़काया गया - उसने सोचा कि राम रूपी मन को और काम करना चाहिए। इसी शरीर के दुखड़े में पड़े रहने से क्या काम होगा ? इस वजह से तम के उभारने के लिए तपस्वी तप करते हैं। इसका उभार सरस्वती से होता है।

सरस्वती – संस्कृत शब्द स और रस से बना है, यानी जो रस के साथ होता है वह सरस्वती है - यह ज़बान की कुव्वत कलामिया है - जो दवताओं में श्रद्धा की देवी है - जब आदमी कोई बात सुनता है - तब ही उसके दिल में मन्थरा रूपी टेढ़ी वृत्ति पैदा होकर उसको भड़का देती है। सत्संग में संतों के वचन सुनने से यही वृत्ति पैदा होती है जो मन को भड़काती है - शरीर के तमोगुण हिस्से को हरकत देती है और उसको चुपचाप नहीं बैठने देती - चूँकि उसमें ख़ास क़िस्म की एकसोई (एकाग्रता) होती है इसलिए वह कानी कही गयी है। यह सबको एक आँख से देखती है। जब तम होश में आया - उसने शरीर रूपी दशरथ को पकड़कर हिलाया और उससे कहा कि राज भरत को दे दो और राम को चौदह बरस का बनवास दो।

भरत - बुद्धि की वृत्ति है। मतलब यह है कि दशरथ बुद्धि से काम लें और मन को ज्ञान के हवाले करें और मन को चौदह बरस बन में रहकर तप करके पहिले क़ाबू में कर लें। चौदह बरस का बनबास - चौदह इन्द्रियों के समूह पर फ़तह पाना। इन्द्रियाँ चौदह ही हैं - पाँच कर्म, पाँच ज्ञान और चार अंतक्करण। जब तक तप करके इनकी वासनाओं को मेट कर कोई शख़्स बलवान नहीं हो जाता तब तक अज्ञान की जड़ नहीं उधेड़ सकता। यहाँ तक कि मन को ख़ुद अपने आंतरिक भाव को दबा देना पड़ता है। अगर वह ख़ुद अपनी हस्ती का अभिमानी रहे तो फिर कोई काम उससे न हो सकेगा।

दशरथ - यानी शरीर ने उसको पसन्द नहीं किया है। जिस्म तो जिस्मानी राहत का आदी है - इसलिए उसकी हालत बदल गयी और राम रुपी ब्रह्म मन, माँ और बाप का हुक्म पाकर अपनी अहंकार रुपी वृत्ति लक्ष्मण और दृढ़ सत रूपी वृत्ति सीता को साथ लिया - क्योंकि असल में इन्हीं दोनों चतुरों की अज्ञान से मुक़ाबला करने के लिए ज़रूरत होती है। इनके जाते ही अयोध्या रूपी जिस्म बेरौनक हो गया - देश इन्द्रियों का दशरथ धाराशायी हो गया। सुमन्त उसको वन की तरफ़ ले गये। सुमन्त - संस्कृत लफ्ज़ 'सु' माने अच्छाई और नेकी की तरफ़ झुके रहने वाली वृत्ति। इसका साथ सिर्फ़ प्रयागराज के इधर तक रहता है - फिर वापिस आकर जिस्म की तरफ़ लौट जाती है - जहाँ उसकी हर वक़्त ज़रूरत है।

प्रयागराज - इस तीरथ का भाव संतों के सत्संग और फ़क़ीरों की सोहबत से है - अब इसी प्रयाग का अर्थ भी सुनो। 'प्र' के मानी है ख़ास और 'याग' के मानी हैं यज्ञ। प्रयाग का अर्थ सत्संग है। यहीं पर यज्ञ की ज़रूरत बाकी नहीं रहती। इस प्रयागराज में तीन नदियाँ गंगा, यमुना, सरस्वती बहती हैं। गंगा भक्ति का, यमुना कर्म का और सरस्वती ज्ञान का प्रवाह है। प्रयाग वहीं है जहाँ कर्म, उपासना और ज्ञान मिलते हैं, वही संतों का सत्संग है, जहाँ इनमें से एक का भी निरादर नहीं होता - बल्कि तीनों का साथ-साथ फल प्राप्त होता है और इंसान सत्संग में आकर असलियत समझ जाता है। यही इसका फल है।

इस तीरथ में अक्षयवट नाम का पेड़ है जो अटल विश्वास है। बिना सत्संग में आये हुए इस विश्वास का पता नहीं लगता। यहाँ उसकी मज़बूती बढ़ जाती है। जिन्होंने सत्संग में आकर विश्वास को मांझा नहीं, वह कच्चे रहते हैं और जहाँ किसी प्रचारक की दलील सुनी फ़ौरन अपने विश्वास से हट गये।

गंगा - संस्कृत माद्दा 'गम' से निकला है जिसके मानी चलते रहने के हैं जब तक कि मंजिल यानी सागर तक न पहुँचे। यह भक्ति का रूप है।

यमुना - संस्कृत लफ्ज़ 'यम' ठहरने से निकला है। यह कर्म है। कर्म करता हुआ आदमी मुक्ति की तरफ़ नहीं जाता, संसार में ही ठहरा रहता है।

सरस्वती - का अर्थ पहिले बता दिया गया है। यह रस देने वाली और आनन्द देने वाली है। सिर्फ़ सत्संग रूपी प्रयाग में इन तीनों का संगम यानी मेल होता है और इसमें नहा कर जन्म सफल करके कर्म, उपासना और ज्ञान की समझ कराके आगे की तरफ़ चलना पड़ता है।

भारद्वाज - संस्कृत लफ्ज़ 'भारत' मानी पकड़ना और 'दाज' मानी जिसने बाजू पकड़ रखा है। यह भारद्वाज है। यह बृहस्पति यानी देवताओं के गुरु का पुत्र कहलाता हुआ सत्संग का अधिष्ठाता पीर व दस्तगीर जीव का हाथ पकड़ने वाला वाला है। यह सत्संग का देव ऋषि है।अब भी उसी रवायत से गुरु को बाँह गहने वाला दस्तगीर या गुरु कहते हैं। चूँकि यह सिलसिला सनातन काल से चला आता है इसलिए सूफ़ियों में पीर को भी बैत करने - हाथ देने और दस्तगीर कहने का रिवाज़ चला आता है। इसका सहारा लेना ज़रूरी है, वर्ना फिर सत्संग बेसहारा ही रहता है।

गोह - संस्कृत लफ्ज़ 'गोह' यानी 'छिपाने' से निकला है,

निषाद - संस्कृत लफ्ज़ 'नि' माने पहिले और ' षद' माने चलने से निकला है। (नि) सरगम का पहिला मगर असल में आख़िरी स्वरहै - हुवल अव्वल - हुवल आख़ीर।' निषाद के मानी मछली पकड़ने वाले मल्लाह से है। यह भी मन की एक वृत्ति है जो सत्संग के पहिले और सत्संग के पीछे तक रहती है। गुप्त रीति से जो सत्संग का राज़ और उसका पता मालूम होता जाता है, जो उसी के भेद को फ़ाश करते, खोलते रहते है - उनको उसका पूरा फल नहीं मिलता क्योंकि वह अपनी सिद्धि को खोकर कमज़ोर होते जाते है। निषाद का केवट की मदद से गंगा पार होने का मतलब जिस्मानी अवध की सरहद से पार होना है ।

केवट यानी मल्लाह - संस्कृत लफ्ज़ केवट माने ख़िदमत (सेवा) करने से निकला है। सेवा ही जिस्म की हद से पार करती है। यह भी मन का एक अंग है जो सत्संग में पहुंचाने में मददगार होता है। जब तक सेवा भाव न हो, कभी फ़क़ीरों की ख़िदमत में कोई नहीं जा सकता। यहाँ तक सत्संग में पहुँचने का राज़ (रहस्य) बतलाया गया है।

भरद्वाज ने रहनुमाई का सामन इकठ्ठा कर दिया - गुरु से हिदायत (शिक्षा) मिल गयी। अब ब्रह्माण्डी मन रूपी राम चले - कर्म की यमुना को बिलकुल पार कर गये। अब जिस्मानी कर्मों से ताल्लुक़ (रिश्ता) छूटा।

नर-नारी हैं प्रेम और भक्ति की वृत्तियाँ जो बीच-बीच में मिलती गयीं और राह बताती रहीं। वही नर - नारी राम को मदद दे देकर आगे का रास्ता दिखाते रहे। राम मंजिलें तय करते हुए बाल्मीकि के आश्रम में आये ।

बाल्मीकि - संस्कृत लफ्ज़ 'बाल्मीक' से निकला है जिसका अर्थ है - चिंउटी का बिल या सूराख। यह मन की गुफ़ा है। अब इन लफ़्ज़ों पर गौर करो जो बाल्मीकि ऋषि ने कहे है। यहाँ आकर मन में ख़ुद सोचने-विचारने की ताक़त आ जाती है। इससे चित्रकूट का पता मिला जहाँ मन्दाकिनी बहती है।

चित्रकूट - चित्र कहते हैं 'नक्श' सूरत या तस्बीर को और 'कूट' कहते हैं ज़खीरा, अम्बार और इकट्ठी की हुई वृत्तियों के भण्डार को। यह इस मन का ऊँचा स्थान है जहाँ आँखों से देखे हुए प्रभाव, कानों से सुने हुए ख़्यालात, दिल से सोचे हुए ज़ज्बात (भाव) और इन्द्रियों के इकठ्ठा किये हुए मह्सूसात (अनुभूतियों

) का अम्बार लगा रहता है, जिसकी वजह से इन्सान ख्वाब में या जागते हुए भी उचित अनुचित काम करते रहते है। यह मन का ऊँचा स्थान है, जहाँ मन्दाकिनी नदी का प्रवाह बहता है।

मन्दाकिनी - 'मन' (जानना) 'दाक' या 'दा' यानी बहकाने वाली नदी का प्रवाह इसी चित्रकूट नदी की शक़्ल में ख़्यालात रहते है। यहाँ ऊपरी मन और ख़्याली मन पर उसको फतह पाने का मौक़ा हाथ आएगा और असली ग़ौर और फ़िक्र (ध्यान व सुमिरन) की वृत्तियाँ - जो अधखिली हालत में पडी हुई हैं - उनका रूप देखा जायेगा। यहाँ आकर लड़ाई-झगड़े से काम नहीं होता, सिर्फ़ प्रेम से इनको अपना बना लेना होता है। इस वजह से राम से तमाम हैवानी और नफ़्सानी ज़ज़्बात (आसुरी और मायावी संस्कार भाव) जो भील, किराट और कोल वग़ैरह की शक़्ल में आते हैं, वही सब जब राम से मिलते हैं तो पहिले जो लुटेरे थे, अब राम के प्रेमी बन जाते है।

भील - संस्कृत लफ्ज़ 'भीरु' डरपोक से निकला है। यह भय का भाव है।

किरात - संस्कृत लफ्ज़ कृ से निकला है माने यह चंचलपने का ज़ज़्बा (भाव) रखने वाला वहशी (पशु जैसा) है।

कोल - संस्कृत लफ्ज़ कोल - इकठ्ठा करने वाले से निकला है। यह भी मन कि वृत्ति का एक ज़ज़्बा है - जो ख़्यालात के असरात (विचारों के प्रभाव) को ले लेकर मन के ख़ज़ाने में रखता जाता है।

गोण्ड - संस्कृत माद्दा 'गरणी' - घेरे से निकला है। यह भी मन की वृत्ति का एक ज़ज़्बा है जो ख़्याल को घेर कर अपने अन्दर रख लेता है।

मतलब यह है कि इन जंगली जातियों के रूप में जितने काम, क्रोध, लोभ, मोह वग़ैरह हैं - चित्रकूट में पहुँचते ही राम के सेवक हो जाते है। यहाँ आकर तमाम ग़ज़ब ढाने वाली वृत्तियाँ उनके ताबे (अधीन) हो जाती हैं जैसे सरकस के खिलाड़ी शेर, चीते, रीछ, हाथी, बन्दर, वग़ैरह को सिखा-पढ़ाकर अपना मन चाहा काम करा लेते है।

(पूज्य लाला जी साहब ने इसी तरह रामायण की कथा में आगे की घटनाओं एवं पात्रों का आध्यात्मिक रहस्य भेद भी बताया है**।)**

तसव्वुर शेख (गुरु का ध्यान)

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी (लालाजी) महाराज)

पूज्य लालाजी साहब (दादागुरु) ने अपने एक पत्र में एक शिष्य को गुरु के ध्यान का मर्म इस तरह समझाया है :

मुर्शिद या गुरु की मिसाली शक्ल, उसकी हरकात, इख़लाक़ और आदत (रहनी-साहनी, चरित्र व स्वभाव) की तरफ़ दिल में नज़र रखना, याद क़ायम रखना, उसका ध्यान बांधना वग़ैरा, सूफ़ियों और संतमत के अभ्यासियों और साधकों के यहाँ का शग़ल है। इसको शग़ल राब्ता (गुरु का ध्यान) भी कहते हैं और बरज़ख़ पीर (बीच का गुरु) भी इसका इस्तलाही (पारिभाषिक) नाम है।

चित्त को एकाग्र करने के लिए यह अमल ऐसा पुरतासीर (प्रभावशाली, शक्ति से भरा हुआ) है कि जादू की तरह अपना करिश्मा दिखाता है, बल्कि और रास्तों से यह क़रीब और काम को सहज कर देता है। शर्त यह है कि जिस मुर्शिद का ख़्याल बाँधा जावे वह मुक़म्मिल हो और संतमत में गुरु की हैसियत रखता हो, जिसका बातिन का तज़किया (आंतरिक हृदय) इन्द्रियों और इच्छाओं से शुद्ध हो चुका हो और माया की हद के पार पहुँच चुका हो, वरना फिर साधक माया-जाल का बन्धुआ हो जायेगा और शैतान-सिफ़त हो जायेगा। इसलिए निहायत एहतियात (आवश्यक सावधानी) लाज़िमी है कि हर शख़्स का ध्यान न बाँधा जाये। बाज़ लोगों ने इसलिए इसकी क़तई मुमानियत (मनाही) कर दी है।

संतमत में शुरू में सत्संग के वक़्त मुर्शिद (गुरु) के चेहरे पर भौंहों के दरम्यान नज़र जमाने का इशारा है। लेकिन अन्दर की तरफ़ अभ्यास करने के लिए ख़ास मुक़ाम और जगह बताई जाती है, जो ज़रूरत के वक़्त और मौके पर उसकी तरक़ीब साधक को बतलाई जाती है।

आम तौर पर खुले हुए तरीक़े से बताने की मुमानियत (निषेध या मनाही) है। वजह मना करने की साफ़ ज़ाहिर है कि बेसमझ लोग शौक़ में आकर बिना मौक़ा और मुनासिबत के इस अमल का बेजा इस्तेमाल न कर डालें। ख़ुद मुसीबत में फँसें और दूसरों को भी आफ़त में डालें।

बाज़ तरीके के बुजुर्गान (गुरु लोग) शग़ल-राब्ते का उस वक़्त तक हुक्म नहीं देते जब तक यह नहीं देख लेते कि साधक में प्रेम का झरना उछल पड़ा है या मौहब्बत का ज़ज़्बा भड़क उठा है, उसको ऐसी

उमंग आयी हुई है कि बिना कहे और सुने खव्वामख़ाह वह शक़्ल को सामने रखने लगा है। अगर ऐसा ग़लवा (घेरा) मुहब्बत का हो जाये कि शक़्ल दूर करने से भी न हटे तो यह क़ुदरत का तक़ाज़ा है और लहर का रुख बहाव की तरफ़ है, वर्ना ज़बरदस्ती शक़्ल को सामने क़ायम करना एक तरह का हठ है जो मूर्ति-पूजा की हद में आ जाता है।

इस हठ और ज़बरदस्ती शग़ल करने का वही नतीज़ा होता है जैसे कि अक़्सर कई तरीक़ों में 'अनहद शब्द' सुनने के लिए कानों में उँगलियाँ लगाना। इस तरह से नतीज़ा यह होता है कि 'शब्द' तो सुनाई दे जाता है मगर आरज़ी (थोड़े देर को)। इसमें बीमारी का भी डर रहता है। इस शग़ल का असली मतलब और फ़िलसफ़ा निहायत बारीक और गहरा है, जिसका इस वक़्त दलील के साथ साबित करना मुनासिब नहीं।

लेकिन मुख़्तसिर (संक्षिप्त) और इशारों के तौर पर इतना कहना इस वक़्त काफ़ी है कि 'बरज़ख़' कहते हैं दरमियानी, बीच वाली चीज़ को, यानी जो एक चीज़ को दूसरी के साथ जोड़ देने में ज़रिया या वास्ता (माध्यम) हो। पीर या दरम्यानी मीडियम (माध्यम) है जीव को परमात्मा से जोड़ने का।

यह समझ में न आये तो इस तरह ख़्याल करना चाहिए कि शीशा ज़रिया है अपनी शक़्ल देखने का, किताब ज़रिया है इल्म (विद्या) सीखने का, उस्ताद ज़रिया है किसी हुनर (कला) के हासिल करने का। इसी तरह जिन्दा गुरु और मुक़्क़मिल हस्ती ज़रिया है परमात्मा की याद दिलाने का, उस ब्रह्म की नज़दीकी हासिल करवाने का।

यकीनन बिला शुबह गुरु की मिसाली शक्ल साधक और ब्रह्म के दरमियान एक जीता जागता वास्ता (माध्यम) है। उसकी आदत, इख़लाक़, तर्जेअमल (कार्यशैली) दुनियावी व्यवहार और रूहानियत का प्रभाव साधक में बिजली की तरह उसके दिल और दिमाग में दाखिल होकर सराहत करता है और हरदम ताज़ा रूह होता रहता है।

यह अमल रास्ते की मुश्किलें दूर करने के लिए या दूसरे अभ्यासियों की रूकी-फीकी रुकावटों को आसान बना देने में बड़ी काम की चीज़ है। लेकिन जिस साधक को यह ख़्याल ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा हो जाये और सामने से न हटे और दूर करने पर भी अलहदा न हो, और फिर उसके साथ उसकी वजह भी समझ में न आवे, तो वाकई इस कदर जल्दी रास्ता आसानी से तय हो जाता है कि ख़ुद को और दूसरे देखने वालों को हालत की तब्दीली (आध्यात्मिक प्रगति) देखकर ताज्जुब होता है।

मेरे एक सत्संगी भाई ने एक से अनेक और अनेक से एक का शग़ल (अभ्यास) दरयाफ़्त किया है। दरअसल उनकी समझ में यह मुअम्मा (पहेली) नहीं आया कि यह दो तरीक़े के मराकबे (आन्तरिक अभ्यास) है। इस मिसाल की तरफ़ ग़ौर कीजिये - सत्संग के वक्त या जब 'हल्का' (सामूहिक सत्संग) होता है तो ऐसा होता है कि तवोज्जह देने वाला एक जगह बैठकर अपने सामने वालों की तरफ़ मुतवज्जह (आकर्षित) होता है।

एक शख़्स तवज्जोह में कोई ख़्याल वाहिद (प्रवाहित) एक से ज़्यादा लोगों के मज़मे में, एक ही वक्त में और एक ही साथ दाख़िल करता है, और कबूल करने वालों की तादाद उस वाहिद (चल रहे) ख़्याल को अलग-अलग क़बूल करती है, तो अब इस अमल-दुतरफ़ा पर ग़ौर की निगाह से देखना चाहिए। एक वाहिद शख़्स के एक वाहिद ख़्याल को मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) लोगों ने अपनी-अपनी तवज्जो अलग-अलग एक खास नुक़ते या मरकज़ (बिन्दु या केन्द्र) की तरफ़ लगा दी।

एक वाहिद शख़्स एक से अनेक हो गया - यानी उसी की एक जाती हुई तवज़्जह मुख़्तलिफ़ लोगों में पैबस्त हो गयी।

दूसरी तरफ़ पच्चीस या हज़ार आदमियों की जुदा -जुदा तवज़्जह एक मरकज़ यानी केन्द्र पर आ कर जमा हो गयी और मिल-मिलाकर एक शक्ल को कबूल कर लिया। इसी को ' एक से अनेक' और 'अनेक से एक' का शग़ल या अभ्यास कहते है। यह भेद है संघटन के सामूहिक सत्संग का और यह अमल (अभ्यास) खास और सबसे ज़्यादा व्यवहार में लाने वाला है। । जब इश्क़ ज़ोर पर आता है और मारफ़त हो जाती है तो तौहीद (अनेक से एक पर आना) अपने आप भागी आती है, बुलाने की ज़रूरत नहीं होती। । दिल की अंगीठी में इश्क़ की आग भड़क रही है, जिस को ग़रज़ हो आकर बुझाये। जलता है जल जायेगा, उसकी क्या परवाह है, मगर नहीं ....

आग जलती देखकर, साईं आये धाय !
प्रेम बूँद से छिड़क कर, जलती लई बुझाय !!

बच्चा जब रोता है तब माँ हज़ार काम छोड़कर चली आती है। इसी तरह तलब, इश्क़ और मारफ़त के पैदा होते ही तौहीद (एक भाव) आ जाती है और ताहिद (तलाश करने वाला) व मतलूब (जिसकी तलाश की जाती हो) दोनों मिलकर एक हो जाते है। जब तौकीद पुख़्ता हो जाती है तो इस्तगना (उपरामता) आ जाती है। एक हालत कभी नहीं रहती। बच्चा बेपरवाह हो गया, माँ को पहचान लिया।

उससे मिलकर एक हो गया। जब वो खेलता फिरता है और माँ बुलाती है तो खिलखिलाकर हँसता है और आगे दौड़ जाता है। दोनों में खेल हो रहा है। कौन सा खेल ? तौहीद का खेल।

बच्चा बढ़ा और बढ़कर अपने आप में महब (गुम) हो जाता है। यही फ़ना है। तौहीद की मन्ज़िल से ऊपर आ गया, खुदी में बेखुदी है। कुछ दिनों यह हालत रही, फिर बक़ा (पूनर्जीवन) है। अब उसका पीछे की मन्ज़िल से कोई सरोकार नहीं रहा। वग़ैर एक गुरु की मदद से रूहानियत (आध्यात्म विद्या) का प्राप्त होना आसान काम नहीं है। माँ अगर न हो तो बच्चे का इश्क़ पुख़्ता (पक्का) कैसे हो? उस्ताद अगर न हो तो शागिर्द (विद्यार्थी) में पुख़्तगी (परिपक़्वता) कैसे आवे ? इस तरह अगर रूहानियत (आध्यात्म) का गुरु न हो तो इल्म रूहानियत (आध्यात्म विद्या) कैसे नसीब हो। यहाँ तो क़दम-क़दम पर सहारा लेने की ज़रूरत पड़ती है। मगर खैर कौन ज़्यादा समझाये ?

सुनो, फिर वही बात दोहराई जाती है। तालिब (जिज्ञासु) में रूहानियत (आध्यात्म) की तलब पैदा हुई। वह गुरु की ख़िदमत में गया, और बच्चों की तरह उनके कलाम (वचनों) से रूहानी ग़िज़ा (आत्मिक आहार) पाने लगा और पलने लगा। मुहब्बत से गुरु का प्रेम पैदा हुआ। प्रेम से उसके असली रूप की पहचान आयी।और इस पहचान से गुरु की जात (व्यक्तित्व) के साथ यकसू (एकता) होने का मौक़ा हाथ आया, कबीर साहब फ़रमाते हैं -

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहीं !

प्रेम गली अति साँकरी, यामे दो न समाहिं !!

अब गुरु और चेला दोनों मिलकर एक हो गये। एक के दिल का असर दूसरे के दिल पर पड़ने लगा। संतमत के सिलसिले की तालीम को समझने, उस पर चलने वाले के लिए इसके बाद वही उदासीनता या इस्तग़ना, वही वका और सत्यलोक के दर्जे नसीब हो जाते है।

राम सन्देश : १९२९ के भंडारे में बताई गयीं हिदायतें

हिदायतें

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचंद्र जी (लालाजी) महाराज)

प्यारे इष्ट मित्रों को मालूम हो कि भ्रम और शक अपने तौर पर स्वयं दुखदायी हैं और नित नए दुःख पैदा करते रहते है। बिना सोचे समझे हुए भी अंधाधुंध कोई काम करने का नतीज़ा ज़रूर पैदा करता है। लेकिन उलटे नतीज़े पर ज़्यादातर लोग पहुँचते है। यह क्या हुआ कि कोई एक आदमी हज़ारों में से अपने मतलब पर पहुँचा हो। जब तक कि समझ होगी और काम करेंगे सब अंग ठीक तौर पर समझकर न किये जायेंगे उस समय तक आशा न रखनी चाहिए कि मन्ज़िल पर पहुँचेंगे।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि कोई काम करने के साथ बहुत सी बातें उसके सम्बन्ध में होती हैं और उन सम्बन्धी बातों का निर्वाह करना ऐसा ही ज़रूरी होता है जैसा कि असली काम का। अधिक जमायत ऐसे लोगों की है कि परमार्थ और परमार्थ पर ठीक ठीक पहुँचने के लिए रास्ता ज़रूर है लेकिन रास्ता चलने वाले लोग परमार्थ के रास्ते पर चलते हुए रोचक और भयानक झगड़ों में फँसे हुए ऐसी आशाओं को दिल में बांधकर चलते हैं कि उत्तराखंड की बजाय दक्षिण में जा ठहरते है। यह अवश्य मानने योग्य है कि रास्ते में चलने में ऐसी कैफ़ियतें और ताक़तें पैदा होने लग जाती हैं कि ज़ाहिर में जिनकी शक्ल दुनियां के लगाव और शरीर के लाभों के वास्ते मालूम पड़ती हैं हालांकि यदि उनके ओर दिल न लगाया जाये तो आत्मा की तरफ़ को झुकाव पैदा करने में मददगार होते हैं और अगर उन्हीं बातों को मकसद मान कर उनकी तरफ़ अपनी तबज्जह समेटकर लगा दी जाती है तो वह यह काम और नीचे के रूहानी केन्द्रों या शारीरिक सम्बन्धों के देवताओं को मददगार बन जाती हैं और थोड़े दिन बाद अपनी शक्तियाँ खोकर पछतावा का मुख देखना पड़ता है। फिर यह बात भी देखनी चाहिए कि जैसा ख्याल वैसा माल।

हम किन-किन दुनियावी आशाओं की गठरी और बोझा सरों पर लादकर ऊँची चढ़ाई पर चढ़ रहे है। यह कब तक सांस फूल रही है। पैर लड़खड़ा रहा है। डर है कि कहीं गहरे और अंधे खन्दक में न जा गिरें। चाहिए कि अब भी बोझ को उतारकर अलग फेंक दें और सावधान होकर फिर चढ़ना आरम्भ करें।

आइये देखते हैं कि रास्ता क्या है, तात्पर्य क्या और तात्पर्य प्राप्त करने का साधन क्या है ? साधन और मकसद तात्पर्य में क्या भेद है ? देखना यह है कि हम ज़रिया को मकसद जानकर चल रहे हैं या मकसद को मकसद समझकर। उसके बाद पंथ का भेद और रास्ता का सार तत्व यह है कि उसमें न तो लालसा है कि :-

(1) इससे पहले और आगे के हालात मालूम होने लग जायें और न ऐसी सिध्दि शक्तियाँ पैदा हो जायें जो अदभुत बातें करने लग जायें जिनको देखकर लोगों में उनकी महिमा फैल जाये।

(2) इस रास्ते में यह वायदा भी नहीं किया जाता कि किसी के गुनाह माफ़ कर दिए जायेंगे या न क़यामत में बख्शवाने की उम्मीद दिखाई जाती है।

(3) दुनियाँ के काम निकलवाने का भी वायदा नहीं किया जाता कि ताबीज़ गंडों से काम बन जाया करे या मुक़द्दमात दुआ से जीते जाया करें या रोज़गार व्यापार में तरक़्क़ी हो या झाड़ -फूंक से बीमारी जाती रहे या होने वाली बात बतला दी जाया करे।

(4) न ऐसे प्रभाव का होना अनिवार्य है कि गुरु की तवज्जह से शिष्यों की अपने आप दुरुस्त हो जाएगी कि उसका गुनाह का ख्याल तक न आवे, स्वयं इबादत और संध्या के पूजा के काम होते रहें, मुरीद (शिष्य) को इरादा भी न करना पड़े या धर्मशास्त्र और उपनिषदों के समझने के लिए जहन और हाफ़िज़ा बढ़ जाये।

(5) न ऐसी बातनी (अन्तरीय) कैफ़ियतों के पैदा हो जाने की कोई मियाद है कि हर समय या ख़ासकर इबादत (संध्या-पूजा) के समय आनन्द में डूबा रहे कि अपने पराये की सुधि न रहे।

(6) न जाप करने या शब्द अभ्यास और दूसरी साधनाओं के समय आकाश इत्यादि नज़र आना या किसी आवाज़ का सुनाई देना ज़रूरी है।

(7) न अच्छे -अच्छे स्वप्नों का दिखाई देना और न अनुभवों का ठीक होना लाज़िमी है। हाँ, यदि ईश्वर ऐसी कृपा करें और दया करें कि ऐसी बातें पैदा हो जायें तो ताज्जुब भी नहीं है लेकिन ऐसी उम्मीदें दिल में बाँध कर रास्ता में ईश्वर को राज़ी रखना और उसकी रज़ामंदी किस बात में है और क्या उसका नज़रिया है और धर्म पर उसके हुकुमों पर पूरी तौर पर चलना उसकी रज़ामंदी है ।

ये हुकुम कुछ तो जाहिर के सम्बन्ध में हैं जैसे संध्या पूजन, उपासना, व्रत , दान, बलवेष कर्म, यज्ञ , जप, तप, तीर्थ, शादी व्योहार बाल-बच्चों, मर्द -औरत , भाई-बहिन, शौहर (पति) स्त्री और अन्य रिश्तेदारों के हक़ व्यवहार अदा करने की रस्में, लेन-देन , पैरवी मुक़ददमात, गवाही, वसीयत की तकसीम जायदाद, सलाम -दुआ, बात-चीत, खाना-पीना, सोना, ठहरना, मेहमानी इत्यादि - ये सब धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में हैं । जैसे ईश्वर से प्रेम रखना, उससे डरना, उसको याद करना, दुनियाँ से प्रेम कम होना, वैराग, ईश्वर ने जो दिया है या जो वह चाहता है उसी पर राज़ी रहना, लालच न करना, संध्या पूजन में दिल का हाज़िर रखना , दीन धर्म के कर्मों को ख़ालिस तबियत के लगाव से करना, किसी को हक़ीर न समझना, ख़ुद पसन्दी न करना, गुस्सा को जबत करना, इत्यादि इन सब आदतों को सलूक या पंथ कहते है। जिस तरह के जाहिरी कर्मों के करना का हुकुम है उसी प्रकार वातिनी (अंतरी) कर्मों के करने का हुकुम है और यह भी कि दिल की खराबी की वजह से कि ऊपरी शारीरिक कर्मों के करने में खराबी पैदा हो जाती है। मिसाल के तौर पर परमात्मा की मुहब्बत की कमी है तो संध्या करने में सुस्ती हो जाती है या जल्दी-जल्दी औंधे -सीधे कर ली जाती है या कंजूसी के कारण

ज़कात (दान) और तीर्थ इत्यादि करने की हिम्मत नहीं होती या अहंकार और ज़्यादती गुस्सा की वजह से किसी पर जुल्म हो गया या हक़ मारे गए।

यदि ज़ाहिर के कामों के करने में अहतयात भी कर ली जावे तो जब तक मन की इस्लाद (दुरुस्ती) या संभाल नहीं हो लेती तो ऐसी अहतयात चन्द दिन से ज़्यादा नहीं चल सकती। इसलिए मन की साज- संभाल उन दर्शनों की वजह से ज़रूरी ठहरी लेकिन अन्दर की खराबियाँ जरा कम समझ में आती हैं और यदि समझ में आ भी जाती हैं तो उनकी दुरुस्ती का तरीक़ा मालूम नहीं होता। और जो मालूम हो भी जाते हैं तो मन की खींचातानी उन पर अमल करना मुश्किल होता है। इसलिए उन ज़रूरतों के लिहाज़ पीर (आदर्श गुरु) की तज़बीब की जाती है कि वह इन बातों को समझकर ख़बरदार करता है और उन्हें इलाज और तदबीर भी बतलाता है और मन के अन्दर दुरुस्ती की ताक़त (इस्तेदाद) और उसके इलाज में सहूलियत और तदबीरों में कुब्बत (शक्ति) पैदा होने के लिए अभ्यास, जाप और लावलाओं की भी शिक्षा करता है। बस पन्थाई को दो काम करना पड़ते हैं - एक ज़रूरी अर्थात बाहरी और भीतरी हुक्मों की पाबन्दी करना और दूसरी जाप की कसरत चाहे जुबानी या ख्याली। इन हुकुमों को पाबन्दी से परमात्मा की रज़ामंदी है और उसकी नज़दीकी भी हो जाती है । ज़्यादती ज़िकर अर्थात शब्द अभ्यास से उसकी बहुत अधिक रजामंदी और बहुत ज्यादा नज़दीकी हासिल होती है - यह खुलास है सलूक यानी पंथ के तरीके और असली मक़सूद यानी लक्ष्य या गोल का। हकूक तरीकत अर्थात पंथ में दाखिल होकर क्या-क्या करना चाहिए ?

(1) जो छोटी-छोटी पुस्तकें ट्रैफ्ट की शक्लों में धर्म और पंथ की हिदायतों को मालूम कराने के लिए हों (या भविष्य में तैयार कराके बांटी जावेंगी) उनको एक-एक शब्द करके पढ़ना होगा।

(2)अपनी सब हालतें उन हिदायतों के माफ़िक़ रखना और बनाना पड़ेगा ।

(3) जो काम करना हो उसका जायज़ या नाज़ायज़ होना अगर मालूम नहीं तो इस काम को करने से पहले प्रसिद्ध धार्मिक लोगों से तहकीकात करने के बाद अमल में लाना होगा।

(4) संध्या-उपासना - बाकायदा अनुष्ठान समेत करना लाज़मी होगा। इसमें सत्संग के साथ तो अति उत्तम है। यदि सत्संगी होते हुए भी बुराई होगी तो बिला किसी नज़र माकूल के वह व्यक्ति पकड़ के योग्य मुबरिबजह है। यदि बिला किसी उजर गफलत से रह जाये तो मर्म (तदामत) के साथ पश्चाताप करेगा ।

(5) यदि माल व उजर ज़कात हो तो उसमें से देना होगा। इसी प्रकार खेत और मार्ग और जमीनदारी की पैदावार में से देना होगा इस हिस्से से।

(6) यदि इस योग्य गुंजाइश हो कि तीर्थ यात्रा कर सके तो तीर्थ यात्रा ज़रूर करना होगा।

(7) अपनी बीबी बच्चों के हक़ अदा करने होंगे। उनको हमेशा धर्म सम्बन्धी बातें बतलानी होंगी और आसान तरीक़ा उनके लिए यह है कि रात और दिन में थोड़ा सा कोई समय नियत करके किताबें आदि से अंत तक अपने घर वालों को पढ़ कर सुनावें और समझावें और जब वह समाप्त हो जावे तो फिर प्रारम्भ कर दें जब तक उनकी मसलें खूब पुख्ता न हो जावें सुनाते रहें और उन पर ऐसा करें कि किसी पंडित से सुना करें और उसको याद करके घर वालों से अवश्य कह दिया करें ।

निम्नलिखित कार्य छोड़ने पड़ेंगे :

रेशमी या जरी का लिबास चार अंगुल से अधिक स्वयं पहिनना या लड़कों को पहनाना, मर्दों को चार मशकाल (एक मशकाल साढ़े चार माशे) या अधिक सोने की अंगूठी पहनना या औरतों को खड़ा जूता या मरदाना लिवास पहनना या ऐसे कपडे बारीक या छोटे पहनना जिसमें बदन दिखलाई दे या ऐसा पायजामा या धोती पहनना जो पैरों से नीचे इस कदर पहुंचे कि पेशाब इत्यादि करने में उसके छीटें पड़ें या ऐसी धोती बांधनी जिसमें बिला ज़रूरत बंदिश की वजह से बदन इत्यादि खुल जाने का अंदेशा

रहे। किसी मर्द या औरत को बुरी निगाह से देखना या औरतों या लड़कों से ज़्यादा मेल-जोल रखना, मर्द को किसी परदावर औरत के पास या औरतों को बैठना किसी ऐसे मर्द के पास जिसके सामने उसको निकलने की मनाही है या अकेले मकान में रहना या बिना किसी सख्त मज़बूरी के सामने आ जाना चाहे वह गुरु ही हो या रिश्तेदार हो। और जहाँ सख्त मज़बूरी न हो वहाँ सर और बाज़ू और कलाई और पिंडलों और गला खोलना ठीक और दुरुस्त नहीं है। औरत को अच्छी-अच्छी पोशाक और जेबर से सामने आना बिलकुल ही बुरा है। मर्द और औरत का हंसना और ज़रूरत से ज़्यादा बातें करना यह सब छोड़ देना चाहिए। जहाँ तक हो सके कोई काम तड़क भड़क और दिखावट का न करना जैसे कि आजकल रस्म और रसूम का खाना खिलाना , लेना-देना, न्यौता इत्यादि देना कम कर देना चाहिए। इस तरह फ़िज़ूल खर्ची करना या कपड़े में बदन तकल्लफ करने यह भी घमंड और दिखलाई में दाखिल है। मुर्दे पर चिल्ला चिल्ला कर रोना, उसका दसवां बीसवां इत्यादि दूर दूर से उसकी मईयत के पीछे अर्साअर्सा तक रहना। लड़कों को कुछ न देना। हकूमत और रियासत वालों का गरीबों पर जुल्म करना, झूंठी नालिश करना, शौक के लिए कुत्ते पालना - इन सब का त्याग करना पड़ेगा।

राम सन्देश : नवम्बर-दिसम्बर, 1997

अपनी ओर निहार लो, औरों से क्या काम ?

(ब्रह्मलीन आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

आसमान में हर तरह की आवाज़ें - सूक्ष्म और स्थूल - भरी हुई हैं, मगर उन सूक्ष्म आवाज़ों को सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कानों के परदे को लतीफ़ (सूक्ष्म) बनाकर उस दर्ज़े की आवाज़ों के साथ मिला लिया हो जिस दर्ज़े की आवाज़ हो रही है।

हमारे बाहरी कान किसी एक प्रकार के परिमाणुओं के बने हुए हैं और अन्दर के कान किसी दूसरे प्रकार के परिमाणुओं के बने है। बाहरी आवाज़ जो सुनाई दे जाती है वह उन्हीं मसालों की होती है जिस मसाले से हमारे बाहरी कानों के परिमाणु बने होते है। इसलिए बाहरी कानों से हम बाहरी आवाज़ों को ही सुन सकते हैं और अन्दर के कानों से अन्तर की आवाज़ों को। ब्रह्माण्ड में और हमारे अपने अन्दर अनेक प्रकार के शब्द हो रहे है लेकिन हम केवल उन्हीं शब्दों को बाहर और अन्दर सुन सकते हैं जिनसे हमारे बाहर और अन्दर के कानों की मुताबिक़त (समानता) होती है।

यही हाल आँखों के प्रकाश का है। हमारी आँख उसी प्रकाश का ज्ञान हासिल कर सकती है जो उसी मसाले से बना है जिससे हमारी आँख बनी है, वर्ना नही। सब ही प्राणी किसी न किसी शक्ल में ज़बान से अपने ख्याल ज़ाहिर करते हैं मगर उनको सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कान की ताक़त को उस शब्द के मुताबिक बना लिया है जो ज़बान से निकल रही है। इंसान इंसान की बात सुनता है क्योकि इसमें हम-जिन्सियत (एक जैसी हैसियत) है। चींटी चींटी से मुँह मिलाकर बात करती है क्योकि उसमें यकसानियत (समानता) है। आवाज़ सिर्फ़ वही सुनी जा सकती है जिसके लिए कानों में क़बूलियत का माद्दा (ग्रहण करने की शक्ति) हो, फिर चाहें आवाज़ मोटी हो या बारीक़। इसी

तरह रोशनी की कमी या ज़्यादती दोनों आँखों के लिए बेकार है। नज़र सिर्फ़ वही चीज़ आ सकती है जिसको आँख क़बूल करे इसी तरह हमारी नाक और ज़बान का हाल है। दुनियाँ में सब कुछ है लेकिन जिसका जैसा ज़र्फ़ (अधिकार या योग्यता) है उसको उतना ही मिल सकता है, ज़्यादा कैसे नसीब हो सकता है ? पर जो मिलने वाला है वह मिलकर रहेगा, इसमें ज़रा भी शक नहीं है ।

मुक़द्दर और क़िस्मत का साफ़ और दूसरा नाम ज़र्फ़ (क़ाबलियत) है। यही नसीब है। नसीब के और कोई मायने फ़िज़ूल है। जिसको जिस्मानी (शारीरिक) दिली, अक़्ली और दिमाग़ी आज़ा (अंगों या इन्द्रियों ने) ने जहां तक अपनी तकमील (पूर्णता) कर ली है, बस उसको उतना ही इल्म होगा और वहीँ तक समझ होगी। अगर किसी को इससे इंकार है तो हमको कुछ कहने की ज़रूरत नही।

यह मालूम हो जाय कि किसको कितना हौसला है और कहाँ तक उसको पाने, लेने, देने और ख़ुद फ़ायदा पहुँचाने का हक़ है। यही सबब (कारण) है कि हम बहस मुबाहिसा वगैरा से भागते रहते है। आइना देखने को आँख की ज़रूरत होती है। अंधों को आइना दिखाना ग़लती है। वह क्या ख़ाक देख सकेंगे ?

हम जानते हैं कि रौशनी और आवाज़ की दुनिया में ख़ास हैसियत है। नादान कहता है 'कुछ भी नहीं' । बहुत अच्छा, कुछ भी नहीं सही। वह भी सच्चा, हम भी सच्चे, क्योकि सच्चाई सिर्फ़ निस्बती है और निस्बत के दर्ज़े होते है। उल्लू को सूर्य नज़र नहीं आता, चिमगादड़ को रौशनी दिखाई नहीं देती, तो इनको बताने से क्या फायदा ?

योगीराज भृतहरि जी कह गए हैं कि इंसानी क़िस्मत एक छोटी लुटिया के बराबर है। चाहे उसको तालाब में डालो या समुद्र में, पानी उतना ही आवेगा जितनी बर्तन की ज़राफियत (घनत्व) है। इसी तरह नास्तिक और आस्तिक दोनों अपनी जगह पर सच्चे है। जो नहीं देखता वह कैसे किसी ख़ास हस्ती का क़ायल हो। जो देखता है उसको क्या हक़ है कि न देखने वाले के साथ लड़ाई करे? अगर उसको देखने और न देखने की लियाक़त हासिल हो गई हो तो दूसरी बात है। और जब तक वह इस तमीज़ से ख़ाली है तब तक उसका कहना और सुनना सब बेसूद (निर्थक) है। इसका मतलब है कि कुदरत में हर जगह काबिलियत(योग्यता) अधिकार व संस्कार का सबाल मौज़ूद रहता है। वगैर

अधिकार व संस्कार के कुछ नहीं मिलता और यह आधिकार व संस्कार भी परमात्मा के असली हुक्म पर मौक़ूफ़ (कृपा पर निर्भर) है :-

बे-बक्त किसी को कुछ मिला है ?
पत्ता नहीं हुक्म बिना हिला है !

इसलिए जो इल्म-इरफ़ान से बाख़बर (ज्ञान से परिचित) है उसको सिर्फ अपने काम पर लगे रहना चाहिए । और दूसरों की रूहानी तकमील (पूर्णता) वक्त के हवाले कर देनी चाहिए। ' क़ब्ल - अज़ - मर्ग बाबेला ' (उर्दू की कहाबत जिसका अर्थ है : मरने से पहले ही शोर मचाना) फ़िज़ूल है । हम धीरे-धीरे अपनी ज़िन्दगी के मरहलों (समस्याओं) को तय करते चले जा रहे है। जो हालत आज है वह कल नहीं थी और जो हालत कल होगी वह आज नहीं है। हम सब लोग तब्दीली (परिवर्तन) की हालत में रहते है। जब यह अच्छी तरह समझ लिया कि हालतें बदलती रहती हैं तो फिर किसी से क्यों उलझना चाहिए ?

इंसान क्यों न सबके साथ मिलजुल कर अपना काम करे ? ख़ैरियत भी इसी बात में है कि सिर्फ अपनी तऱफ नज़र रखे और जीवन के व्यावहारिक रूप ज्ञान रखते हुए अपनी ज़ाती (निजी) भलाई का ख़्याल करता रहे -

जन्म-मरण का दुःख याद कर , कूड़े काम निवार,
जिन जिन पन्थों चालना , सोई पन्थ संवार !
अपनी ओर निहारिये , औरों से क्या काम ,
सकल देवता छोड़कर , भजिये गुरु का नाम !!

गौतमबुद्ध के बताये पाँच मराकबों का परिचय

(दादागुरु महात्मा रामचंद्र जी (लाला जी) महाराज के पत्रों की पुस्तक "अमृत रस " से)

महात्मा गौतमबुद्ध ने जो पाँच मराकबे (ध्यान) अपने शिष्यों को तालीम फरमाए हैं वह लिखता हूँ। उनको पढ़कर सत्संगी भाई इन मराकबों का खुलासा समझ लें। मतलब तो नियत, फ़ेल (कर्म) और ख़्यालात में अपनी और दुनियाँ की भलाई के लिए है, न कि कोई ख़ास सूरत मराकबे के ज़रिये से ऐसी क़ायम करना है जो कि सिर्फ़ बातचीत की हद तक ही क़ायम रहे और वैसी रहनी न बने।

बाज़ अभ्यासियों को ऐसे मराकबे से सिर्फ़ एक हालत और क़ैफ़ियत पैदा हो जाती है जो चंद दिन के लिए सिर्फ़ एक ज़ौकी क़ैफ़ियत (आनन्द की दशा) पैदा हो जाती है, मगर जाहिरी अमली पहलू कभी अख़्त्यार नहीं किया जाता है। मसलन हर ज़र्रे में उसी का ज़ल्वा नज़र आता है या अपने आपको सब ज़र्रात और मख़लूक़ (प्राणी मात्र) यहाँ तक कि छोटे से छोटे ज़र्रे में देखता है। बल्कि तमाम मख़लूक़ को अपने में देखता है, वगैरा-वगैरा। लेकिन यह सब बातें तसल्लीवक्श नहीं हैं जब तक कि उस हाल के मुताबिक़ जाने या अनजाने, इरादे या बिला इरादे, काम न होने लग जाये।

आप सड़क से गुज़र रहे हैं और एक चार बरस का बच्चा सर्दी की वजह से कांप रहा है और उसके पास कपडा नहीं है, इसलिए वह रो रहा है। आपके पास दो रुपये भी जेब में मौजूद हैं और थोड़ी देर में आप उन रुपयों से दिवाली के दिन बाज़ार से एक तस्बीर खरीदना चाहते हैं। अब इस मुक़ाम पर अगर आपकी मसनूई (बनावटी) या जौक़ी क़ैफ़ियत इज़ाज़त न दे कि बच्चे को कपड़ा खरीद कर दिया जाये और तस्बीर को खरीद ही लिया जाये तो मेरे ख्याल में मराकबे से या अभ्यास से या किताबी इल्म से हासिल की हुई क़ैफ़ियत कोई हस्ती नहीं रखती। यह एक मिसाल है। इस किस्म की हज़ारों मिसालें मौज़ूद है। खुलासा और नतीजा यह निकलता है कि इल्म, ज्ञान, क़ैफ़ियत और हालत से ऐसी आदत बन जानी चाहिए कि हर कर्म बिला इरादे उसी आदत के मुताबिक होने लग जावे।

ग़ैर क़ौमों पर आजकल यह इलज़ाम है कि वह बिलकुल रूहानियत से ख़ाली है। लेकिन मैं देखता हूँ कि जो बात उनको मालूम हो गयी है उसकी साबित करने को लेक्चर देते है। बल्कि उनके कर्म भी आदतन उसी के मुताबिक हो गए है। फतेहगढ़ के मिशन के शफाखाने में एक मिस साहिबा डॉक्टर थी। उन्होंने अपने दिल और जान को दूसरों की भलाई के लिए सरासर वक़्फ़ (न्योछावर) कर

दिया। तमाम दिन और रात जिस्म से और दिल से जनता की ख़िदमत किया करती थीं और यह सब ख़िदमत बिना मुआबज़े और बिला गरज़ थी।

मुमकिन है कि निष्काम कर्म इसी का नाम हो। लोग कहते हैं कि इसकी तह में कोई गरज़ (स्वार्थ) शामिल थी। अगर कोई गरज़ भी हो तो उनकी गरज़ उनके दिल में होगी। ख़िदमत तो तुम्हारी बिला मुआवज़े की जाती रही है। क्या सरकारी शफ़ाख़ानों में नौकरी और तनख्वाह की गरज़ नहीं है ? तनख्वाह भी मिलती है, हर मरीज़ अपनी हैसियत के मुताबिक ख़िदमत भी करता है, खुशामद भी करता है और हम एक ही मुल्क के रहने वाले भी हैं, लेकिन जो हमदर्दी (या बेरुखी ?) के नज़्ज़ारे मुल्क के शफ़ाख़ानों में दिखलाई देते हैं वह आपका दिल जानता है। इससे आप इल्म और अमल की असलियत की जांच कर लें।

पाँच मराकबे

अब आप महात्मा बुद्ध के पाँच मराकबों (अभ्यास) और उनके फतूहात (अनुभव कर लेना) की तरफ गौर कीजिये। बुद्ध भगवान का कौल है - जो शख्स ख़ुदपरस्ती में फंसा रहता है और मराकबे में मशगूल नहीं होता और दुनियाँ के असल मंशा को भूल गया है ।

(1) पहला मराकबा - मोहब्बत और प्रेम का ध्यान: । इस ध्यान में अभ्यासी अपने दिल को इस तरह साधता है कि मैं तमाम मख़लूक़ात (जीव मात्र) की बहबूदी (भलाई) यहाँ तक कि अपने दुश्मनों की भी भलाई चाहता हूँ। इसको सर्व-मैत्री कहते है। इसमें यह प्रार्थना की जाती है कि ईश्वर सबका भला करें।

(2) दूसरा मराकबा - रहम, करुणा या दया का ध्यान : इसमें यह ख्याल किया जाता है कि तमाम मख़लूक़ात (जीव-मात्र) मुसीबत में हैं और अपनी ख़्याली ताक़त (इच्छा-शक्ति) के ज़रिये से उनके रंज और ग़म की तस्बीर अपने दिल के सफ़े पर खेंची जाती है। यह इसलिए कि हमारी रूह को मख़लूफ़ की हालते-ज़ात पर बहुत कुछ रहम और तरस आये और कुछ मदद मांगने की मंशा पैदा हो।

(3) तीसरा मराकबा - ख़ुशी का ध्यान : इसमें हम दूसरों की भलाई का ध्यान करते हैं और उनकी ख़ुशी में तहेदिल से शामिल होते हैं और खुद भी ख़ुशी मनाते है।

(4) चौथा मराकबा - कसाफ़त, नापाकी (अपवित्रता) का ध्यान : इसमें हम बुराई के बुरे नतीज़े और गुनाह (पाप) और बीमारियों के अन्ज़ामों (नतीज़ों) पर गौर करते है। इन नापाक हरकतों (पाप या अपवित्र

कर्मों) से हासिल ख़ुशी अक्सर आरज़ी (थोड़ी देर की) होती है और उसके नतीज़े बहुत खतरनाक होते है।

(5) पाँचवाँ मराकबा - शुकराना अदा करने का ध्यान : इसमें हम मोहब्बत और नफ़रत, जुल्म और या ज़बरदस्ती, दौलत और कंगाली, किसी चीज़ की परवाह नहीं करते और अपनी हालत पर शाकिर (कृतज्ञ) होकर, हर हालत में ईश्वर का शुक्रिया अदा करते हैं।

ऊपर लिखे हुए मराकबों में मसरूफ (तल्लीन) होकर बुद्ध भगवान के चेलों ने इल्म ब्रह्म विद्या हासिल की। दरअसल इनमें हक़ीक़ी (सत्य) की तलाश है। अब सबाल यह रह जाता है कि अमल किस तरह किया जाए?। मालूम होना चाहिए कि मराकबे की निस्बत जनता की वाक़फ़ियत के लिए तफ़सील का पता देना तो नामुमकिन है लेकिन अमल और शग़ल (अभ्यास) के वास्ते अधिकार, क़ुव्वते -बर्दाश्त (सहन-शक्ति) और कुव्वते क़बूल (ग्रहण-शक्ति) वग़ैरा की ज़रूरत देखी जाती है क्योंकि हर शख्स एक ही तरह की क़ाबलियत नहीं रखता और हर अभ्यासी की एक ही तरह की तालीम नहीं होती। मुख़्तलिफ़ तबीयतों के अभ्यासी होते हैं। हरेक की क़ाबलियत की जांच -पड़ताल करके उनके शौक का मुआफ़िक (रुचि के अनुसार) तालीम का दर्ज़ा क़ायम किया जा सकता है।

अगर मराकबों के अमल की ख़ास तरकीब और इज़ाज़त आम बातिनी क़ैफ़ियत के उसूलों पर दे दी जाये तो मेरा तज़ुर्बा यह है कि बजाये फायदे के नुक़सान ज़्यादा होगा और वक्त बेकार जाएगा। मेरा मतलब ज़ाहिर न करने में तंगदिली का नहीं है बल्कि असूल का सही मंशा लेकर चलना ज़रूरी है। अगर आँख बनाने में आपरेशन के लिए उस वक्त का इंतज़ार न किया जावे जो उसके पकने और तैयार होने में लगता है और आपरेशन कर दिया जाए तो क्या यह आपरेशन क़ामयाब कहलायेगा ? बल्कि मेरे ख़्याल में तमाम उम्र के लिए मरीज़ को मायूस होकर बैठा रहना पड़ेगा।

उसी तरह आंतरिक अभ्यास करने वाले हल्कों में (सिल्सलों या सत्संगी संस्थाओं में) भाग लेने वाले जानते हैं कि गुरु लोग जब किसी मराकबे का ख़ास फ़ायदा और असर अपने किसी दोस्त को पहुँचाना चाहते हैं तो उसके लिए एक ख़ास इंतज़ाम करते हैं और इस ख़ास इंतज़ाम के करने में अलावा ज़ाहिर ज़रूरी बातों के एक ख़ास रूहानी हिम्मत और फ़ैज़ का होना ज़रूरी होता है। महज़

इकतरफ़ा हिम्मत बाज़ वक्त बेफ़ायदा ,बल्कि ख़तरनाक साबित होती है। इसलिए हरेक से, ख़ासकर अपने हल्क़े के भाइयों से, यह नसीहत करने के क़ाबिल बात है कि किसी ख़ास मराकबे या किसी ख़ास कैफ़ियत के असर को अपने अंदर पैदा करना हो तो ख़ास इंतज़ाम के साथ तवज्जह और हिम्मत को इस्तेमाल में लाएं। परमात्मा चाहेगा, फायदा होगा।

चौरासी के चक्र

(ब्रह्मलीन परमसंत डॉ॰ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार भोगते-भोगते जब वे क्षीणप्रायः हो जाते हैं और संस्कारों के परदे झीने रह जाते हैं तो ईश्वर ऐसी आत्माओं को कृपा करके मनुष्य चोले में भेजता है ताकि वह चैतन्य वृत्ति को आत्मा पर से उन झीने परदे को हटा कर पवित्र, निर्मल, चैतन्य, बनाकर चौरासी के चक्र से बाहर निकाल दें और अपने परमपिता परमात्मा की गोद में पुनः वापस हो सकें तथा परमशान्ति पा सकें। सच तो यह है कि हम तजुर्बा हासिल करने के लिए भेजे गए है। यहाँ आकर आत्मा दुनियावी चीज़ों में फँस गयी है। हम ज्यों-ज्यों दुनियाँ को अपनाते हैं रुहानियत दबती जाती है। आत्मा पर मन, बुद्धि और ख़्वाहिशात के परदे पड़ जाने से वह अपने आपको भूल गयी है और उस पर मन हावी हो गया है।

यह दुनियाँ मन का ही पसारा है। यहाँ के सभी जीव, यहाँ की माया के सामान बन गए है। हम दुनियाँ की चीज़ों का रस लेते हैं और उन्हीं में आनन्द मानते है। विपरीत इसके आनन्द सिर्फ आत्मा में है। चूँकि हमें उसका ज्ञान नहीं है, हम उन्हीं आरज़ी सुखों को सब कुछ मान बैठे है। तजुर्बा करना यही है कि एक -एक चीज़ को भोग तो पावेंगे, परन्तु चीज़ न तो आनन्द देने की शक्ति रखती है न दे सकती है और जो कुछ भी थोड़ा बहुत सुख हमें मिलता है वह इन चीज़ों से नहीं मिलता बल्कि वह तो अपने अन्तर में मिलता है। जैसे खाने को ही ले लें। हम जब तक भूखे हैं, उसे हम बड़े चाव से खाते है। परन्तु जब हमारा पेट भर जाता है, तब ज़बरदस्ती कुछ खा लिया जाय, तो उसका प्रतिकूल परिणाम मिलता है, यानी शरीर अस्वस्थ हो जाता है। कभी-कभी प्राणघातक भी हो जाता है। अगर वास्तविक आनन्द खाने में होता तो ऐसा नहीं होना चाहिए था। वही खाना जो कभी सुख का साधन था, अब क्यों दुख़ का कारण बन गया? दूसरा उदाहरण किसी खेल का ले लें। जैसे हम ताश खेल रहे हैं, बड़ा आनन्द

आ रहा है, खेल छोड़ने की तबियत नहीं होती। अगर कोई छेड़छाड़ करे तो बुरा लगता है, उसे मना कर देते हैं। घंटों उसी में मशगूल रहते हैं। पर उसी समय यदि कोई किसी सगे रिश्तेदार की बीमारी का या ऐसा ही कोई अन्य दुखद समाचार देता है तो हम ताश फेंक कर उठ खड़े होते हैं। सब आनन्द एक तरफ़ धरा रह जाता है। अतः वास्तविक आनन्द तो कहीं और था जिसे समझ कर भी हम नहीं मानते। विषयों का आनन्द तो सब काल व सब अवस्थाओं में ऐसा ही रहा है और रहेगा। यह क्षणिक है। स्थायी आनन्द तो आत्मा में है, वह एक रस है, उसमें घटाव बढ़ाव नहीं होता।

हम सभी इस काल्पनिक जगत में फँसे हुए हैं और कहते हैं कि संध्या-पूजा में मन नहीं लगता, फायदा नहीं होता। हो भी तो कैसे ? हम चौबीसों घंटे दुनियाँ की चिन्ता में रत रहते हैं। इसी को अपना लक्ष्य मान रखा है। श्रष्टि के नियमाकूल दुनियाँ चलती रहती है और आगे भी चलती रहेगी। यह अपनी चाल नहीं बदल सकती, नहीं छोड़ सकती। इसके कर्म भी हमें करने ही पड़ेंगे। हम सत्संगियों को चाहिए कि हम अपना फ़र्ज़ पूरा करें। तजुर्बा हासिल कर नश्वर पदार्थों से अपना सम्बन्ध विच्छेद करें और सारी वस्तुओं को दृढ़ता से ग्रहण करें। संत जन यह कभी नहीं कहते कि दुनियांवी फ़र्ज़ पूरा न करो। फ़र्ज़ अवश्य पूरा करो लेकिन ड्यूटी समझ कर जैसे संडास में ज़रूरत भर बैठते हो। मान लो कोई काम करना ही पड़े तो उसे करो। परन्तु उसमें फलासक्ति न रखो वरना संस्कार बने वगैर न रहेंगे, और अन्त में उन्हें भुगतना भी पड़ेगा। फल त्याग का यह मतलब भी नहीं है कि कर्मफल का सर्वथा परित्याग कर दो, अपरंच उसे अपने इष्ट को अर्पण कर दो। भला भी उसी का, बुरा भी उसी का। अपना उसमें कुछ भी नहीं। ऐसा करते रहने से संस्कार बनना रुक जायेगा और जब संस्कार ही नहीं रहे तो आवागमन कैसा? यही अधिकार बनना है। यह कहीं बाहर से नहीं आता है और न मिलता है। जो कुछ है वह तुम्हारे अन्दर है। मान लो कि कमरे की सफाई करनी है तो पहले यह आवश्यक है कि दरवाज़े ठीक से बन्द कर लो, फिर उसमें झाडू लगाओ। तब तो कमरा ठीक से साफ़ होगा वरना एक तरफ़ से झाडू लगाओगे और दूसरी तरफ़ खिड़कियों और दरवाज़े के रास्ते गुवार आते रहेंगे और कमरा कभी साफ़ न

हो सकेगा। इसी प्रकार हृदय-रूपी कमरे को साफ़ करने के लिए ज़रूरी है कि पहले उन इन्द्रियों पर बन्द लगायें जो अहंकार बनाती है। संस्कार बनने के कई रास्ते हैं - जैसे कान से शब्द को सुनकर, आँखों से देखकर, जिह्वा से खाकर और चमड़े को स्पर्श करके। इनमें समता लाओ। फिर सत-असत विवेक की कसौटी पर इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को कसो। असत्य का परित्याग कर सत्य को अपनाओ और वैसा ही अपना सहज स्वभाव बना लो। फिर तुम्हें संतों के संग में जाने और उनके सदवचनों को सुनने और समझने पर पर जन्म-जन्मान्तर के दबे संस्कारों को उधेरने का मौका आयेगा। जब वे संस्कार उखड़ें, उन्हें परमात्मा की एन कृपा समझ कर भोग लो। जहाँ अपने को कमज़ोर पाओ, उनसे दुआ करो। वे तुम्हें भोगने की शक्ति देंगे। इस तरह सतत प्रयत्न करते-करते तुम अपने हृदय की सफाई कर सकोगे। तब तुममें अधिकार जागेगा। अपनी चेष्टा से यह कदापि नहीं हो सकता। सतगुरु की ओट लो। उनके चरणों में अपने आपको समर्पण कर दो। निरन्तर उनका ध्यान रखो और उन्हीं में लय हो जाओ। उनकी ही कृपा से तुम्हारा मन मरेगा, आपा टूटेगा और आत्म-साक्षात्कार होगा। रास्ता कटने से कटता है। इसको कहाँ तक खोलकर समझाया जाये। वाणी भी किसी हद तक ही जा सकती है। अनहद में तो सिर्फ आत्मा ही गम्य है, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब पीछे रह जाते है।

अभी तो हम मन के घेरे में है। वह हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाये हुए है। एक के बाद एक दीगर वासनायें हमें चक्र में घुमा रही है। कभी हम बाल-बच्चों में फँसे हैं, तो कभी रिश्तेदारों में। कभी कुछ चाहते हैं, तो कभी कुछ और। इन्हीं में सारा सुख मान रहे हैं, निगाह ऊपर को जाती ही नही। अगर थोड़ी देर के लिए संतों की सोहबत में जा बैठते हैं तो वैराग होता है, परन्तु ज्योंही हम वहाँ से हटे नहीं, माया फिर दबोच लेती है, और काल के कुचक्र में नचाने लगती है। कहाँ तो हम आये थे कि फ़र्ज़ पूरा कर तजुर्बा हासिल करें और सबसे अलहदा हो जायें, दुनियाँ के किसी झगडे से मतलब न रखें, कहाँ इसी को सब कुछ मानकर उसी में उलझ कर रह गए। जब तक दुनियाँ की क़दर हमारे दिल में है ईश्वर से प्यार नहीं होगा और न परमार्थ की कमाई हो सकेगी। हम सब ख़ुद ही अपने को दुनियाँ में फँसाये हुए

है। दुनियाँ तो स्वतः जड़ है - वह क्या किसी को फँसायेगी ? हम स्वयं जब तक इसके बाहर न निकलना चाहें, तब तक न तो गुरु की मदद काम करेगी और न परमात्मा की। संत कभी किसी को दुनियाँ नहीं देता, बल्कि वह तो उसे उजाड़ कर जीव को ईश्वर से मिला देता है।

हम दुनियाँ में फँसे हुए है। हम अपना सम्बन्ध दुनियाँ से उतना ही रखें जितना कि मात्र जीने भर के लिए आवश्यक हो, वर्ना सबसे अलहदा हो जायें। इज़्ज़त, आबरू, मान-मर्यादा, नातेदार-रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी - सब दिखावे के है। उनका मोह जो हमें जकड़े हुए है, वही दुःख का असली कारण है। मन चाहता है कि सभी उसके कहने में चलें,उसकी इज़्ज़त करें। यही मन का भरम है। इसे तोड़ दो और धर्म पर आ जाओ। न किसी से छेड़-छाड़ करो, सबसे अलहदगी अख़्तियार करो और इनसे निकल भागो। जब तुम्हारे अन्दर सच्ची चाह निकलने की होगी, गुरु और ईश्वर सब मदद के लिए आ जायेंगे, तुम्हें खोजना नहीं पड़ेगा। वे बाहर तो हैं नहीं, अपितु तुम्हारे अन्दर हैं, हाँ, तुम उन्हें पहचानते नहीं, इसीलिए मारे-मारे फिरते हो। सच्चे दिल से उसे पुकारो, मदद अवश्य मिलेगी।

गुरु हमें दुनियाँ से कैसे निकालता है, मिसाल के तौर पर सुनो। बचपन में मुझे जुआ खेलने का नहीं बल्कि देखने का शौक था। जहाँ कहीं जुआ खेला जाता था, मैं वहाँ अवश्य पहुँच जाता था और दिलचस्पी के साथ वहाँ घंटों समय व्यतीत करता था। एक बार ऐसा हुआ कि दिवाली के दिन जनाब लाला जी (महात्मा रामचन्द्र जी महाराज - मेरे गुरु) मेरे यहाँ पधारे हुए थे। रात को जुआ देखने के लिए मैं बेचैन था। लाला जी जब सो गए, मैं भागकर वहाँ गया जहाँ जुआ खेला जा रहा था और काफ़ी रात तक वहाँ रहा। दूसरे दिन कहीं सड़क पर जुआ हो रहा था, मैं वहाँ भी घंटो खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा। शाम को जब सत्संग में आया तो किसी बहन ने लाला जी से कहा कि भाई साहब भी तो जुआ खेलते है। लाला जी ने पूछा, कौन ? श्रीकृष्ण। बहन ने कहा - जी हाँ, श्रीकृष्ण। लालाजी ने अपना मुँह दोनों हाथों से ढ़ककर दहाड़ें मार कर रोना शुरू किया और काफ़ी देर तक रोते रहे। मैं किंकर्तव्यविमूढ़

बन गया, सहमा और डरा, सर झुकाये बैठा रहा। इसके बाद भी लालाजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन उसके बाद मेरी वह आदत हमेशा के लिए मिट गयी।

अभ्यासियों का एक महान शत्रु - काम है। इन्सान के अन्दर प्रेम का भण्डार है। आमतौर पर देखा जाता है कि यह प्रेम वासनामय ही है। कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में, वासना का अंग उसमें समाया हुआ है। मन स्वभावतः दुनियाँ का रसिया है। एक चाह को पूरी तरह भोग भी नहीं पाता कि दूसरी चाह आ बैठती है। अतः वह प्रेम और कुछ नहीं गलीज़ है। असल प्रेम तो आत्मा का विषय है। प्रेम का दूसरा नाम ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। जब तक मन का प्रेम आत्मा से नहीं जुड़ेगा, सच्चा प्रेम नहीं मिल सकता। मन का लगाव आत्मा से है। वह उसी से शक्ति लेकर सब कुछ करता- धरता है। माया देश में आत्मा पर यह हावी है और जैसे चाहता है उसे नचाता रहता है। काम शक्ति मन ही के आधीन है, एकान्त इसका सबसे बड़ा सहायक है। जहाँ तक सम्भव हो सके, जब तक तुम मन के स्थान पर हो, काम शक्ति को न उभरने दो। जब कभी इसका ज़ोर हो, फौरन एकान्त का त्याग कर दो, वरना यह ढ़ेर कर देगी। सभी सत्संगी भाइयों और बहनों को ऐसी परिस्थिति में पूर्ण सतर्कता बरतनी चाहिए। पुरुषों को किसी भी ग़ैर स्त्री के साथ, चाहे माँ ही क्यों न हो, और स्त्रियों को ग़ैर पुरुषों के साथ एकान्त होना वर्जित है। ज़रूरत के मुताबिक पुरुष अपनी धर्मपत्नी को और स्त्री अपने पति को अवश्य साथ ले लें, वरना धोखा खाना पड़ेगा। पर-स्त्री गमन सबसे बड़ा अपराध है। संतमत इसे क्षमा नहीं करता। ऐसा व्यक्ति संतमत से निकाल दिया जाता है। सेक्स (sex) का एन्जॉयमेंट (enjoyment) एक दफा कर लेने के बाद , मन आसानी से वहाँ से नहीं मोड़ा जा सकता। अपनी स्त्री का संग भी कर्तव्य के नाते (duty sake) होना चाहिए, वरना अभ्यास ठीक नहीं हो पायेगा। यह नहीं समझते कि जिस शक्ति को व्यर्थ खोने में इतना आनन्द मिलता है उसे बचाये रखने में कितना आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार सब इन्द्रियों को नियमित (regulate) करो। ज़रूरत के मुताबिक उनका इस्तेमाल करो, ताकि कम से कम शक्ति का ह्रास हो और इधर से उपार्जित की हुई शक्ति को ईश्वर के पथ पर लगा दो।

दुःख का कारण

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

मेरे प्यारों !

दुःख के कारण भ्रम और शंकाएँ है। इनके द्वारा ही हम अपने लिए नये-नये दुःख पैदा कर लेते है। बिना सोचे समझे अन्धाधुन्ध किसी काम को करते रहने से कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होत्ता है। यह भी सम्भव है कि ऐसा करने पर भी सहस्त्रों मनुष्यों में से कोई एक पुरुष अपने ध्येय को प्राप्त कर सका हो, परन्तु अधिकतर यही देखा गया है कि जब तक समझ-बूझ के साथ ढँग से काम नहीं किया जायेगा, उस कार्य के सभी अंगों को ठीक तौर पर नहीं चलाया जायेगा तब तक सफलता मिलना असम्भव है।

जैसे दवा के साथ पथ्य होता है, उसी प्रकार प्रत्येक काम के साथ कुछ न कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिन्हें मुख्य कार्य के समान ही निभाना भी अत्यन्त आवश्यक है।

संसार में अधिकतर मनुष्य ऐसे होते हैं जो परमार्थ और परमार्थ के असली रूप को नहीं समझते और न कभी वे उसको समझने का प्रयत्न करते है। इसीलिए वे उसके पूर्ण लाभ से वंचित रह जाते है। परमार्थ तक पहुँचने के लिए एक रास्ता है जिस पर चलकर हम वहाँ पहुँच सकते है। परन्तु इस मार्ग पर चलने वाले मुसाफ़िर ऐसी आशाओं को लेकर उधर रवाना होते हैं कि जिनके कारण वे उत्तराखण्ड न पहुँचकर दक्षिण दिशा में अपने आपको फंसाकर वहीं नष्ट होकर रह जाते है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस ओर चलने वाले पथिक में आगे चलकर कई प्रकार की ऐसी स्थितियाँ, सिद्धियाँ और शक्तियाँ आने लग जाती हैं कि जिनका बाहरी रूप ऐसा दिखाई देता है कि ये हमारी शारीरिक लाभ अथवा सांसारिक पदार्थों के लाभ के लिए आयी हैं, परन्तु यदि हम इनकी ओर ध्यान न दें और आगे बढ़ते चले जायें तो ये आत्मसाक्षात्कार में हमारी सहायक बन जाती है, और उनके द्वारा ही हम अनन्त सुख प्राप्त कर सुखी बनते है।

परन्तु अपनी ग़लती से उनको ही हम ध्येय समझकर यदि अपना झुकाव उधर को ही कर देते हैं तो ये योग शक्तियाँ हमारा मुँह नीचे की ओर मोड़ देती हैं और हमारा पतन करती हुईं थोड़े ही दिनों में वहाँ लाकर पटक देती हैं कि जहाँ पर न उन शक्तियों का पता चलता है और न उस मार्ग का और हम पूरे संसारी मनुष्य बनकर रह जाते हैं जिसके लिए हमें कभी-कभी पछताना भी पड़ता है। " यथा मति तथा गति।"।

इस मार्ग पर चलने वालों ने क्या कभी यह विचार किया है कि हम कौन-कौन से साँसारिक आशाओं की गठरी लादे हुए आज इधर को चल रहे है। हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर पहुँचना चाहते हैं परन्तु हमारे सिर पर इतना बोझ लदा हुआ है जिसके कारण हम थकित हुए जा रहे है। हमारे पाँव लड़खड़ा रहे है। हमारी शक्ति जबाब दे रही है। ऐसी दशा में क्या यह सम्भव नहीं है कि हमारे पाँव फिसल जायें और हम औंधे मुँह किसी खड्डे में गिरकर अपनी हड्डी पसली तोड़ लें। ऐसा होने पर हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो सकता है।

हमें चाहिए कि इस ऊर्ध्व गति के समय बहुत सावधान रहें। गठरी को सिर से दूर फेंक दें और हलके बन कर ज़ल्दी-ज़ल्दी कदम उठते हुए उस स्थान पर पहुँच जायें जहाँ से न लौटना होता है और जहाँ न किसी प्रकार का दुःख है। ।

आओ, देखें रास्ता क्या है ? हमारा इष्ट (ध्येय) क्या है ? इस ध्येय को पाने का साधन क्या है ? ध्येय और साधन में भेद क्या है ? देखना यह है कि हम इस ओर साधन को ध्येय मानकर चल रहे हैं या ध्येय को ध्येय समझकर।

जिस मार्ग पर तुमको चलना है, वह निष्कामता का मार्ग है। यदि तुम अपने मन में किसी लालसा को लिए हुए यहाँ आये हो या किसी प्रकार की अन्य इच्छा (इस लोक की अथवा परलोक की) तुम्हारे हृदय में उठ रही है तो तुमको समझना चाहिए कि हम अपने मार्ग से च्युत हो रहे हैं। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए साधन ओर सत्संग करता है, वह वास्तव में जिज्ञासु नहीं है। वह ईश्वर को नहीं चाहता और न उसके लिए यहाँ आता है।

हमारा जो मार्ग है, उसमें किसी मनुष्य को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसमें ऐसी सिद्धियाँ और शक्तियाँ आ जायेंगी कि जिनके द्वारा वह भूत भविष्य का ज्ञाता हो जायेगा अथवा कोई अद्भुत चमत्कार दिखाने लग जायेगा कि जिसके कारण वह समाज में प्रतिष्ठित समझा जाने लगे और सर्व-साधारण उसकी महिमा गाने लगे।

हम किसी से यह वायदा नहीं करते कि उसके पाप क्षमा करा दिए जायेंगे तथा अशुभ कर्मों के करने पर भी यम-दण्ड से बचा लिया जायेगा। तुम लोगों को ये आशा छोड़ देनी चाहिए।

हम यह भी वायदा नहीं करते कि आज से तुम्हारे सारे कार्य ठीक होंगे और तुम क्लेशों से बचा दिए जाओगे। ये तो सब भोग हैं। चाहे भजन करो या न करो, तुम्हें भोगने ही पड़ेंगे। गंडा, तावीज़, झाड़फूंक, दुआ, इत्यादि के द्वारा साँसारिक लाभ हमारे यहाँ नहीं पहुँचाये जाते। कोई व्यक्ति अपना मुक़दमा जीतने की गरज़ से, परीक्षा में पास होने के लिए, रोज़गार और नौकरी के लिए, रोगों से निरोग होने के लिए, सन्तान की प्राप्ति के लिए अथवा किसी दूसरे कष्ट को दूर करने के लिए यहाँ आया है तो वह अधिकारी नहीं है। ईश्वर प्राप्ति के लिए ये सारे विचार त्याग देने चाहिए और

कभी आशा नहीं रखनी चाहिए कि हम उनकी आगे पीछे की बात बता देंगे। यदि तुम्हें इन बातों की चाहना है तो इसके लिए संसार में कमी नहीं है। ऐसे लोगों के पास तुम जा सकते हो।

कई लोग यह चाहते हैं कि उन्हें कुछ भी परिश्रम न करना पड़े। गुरु अपनी शक्ति से ही हमें ऊँचे स्थानों पर पहुँचा दे और ऐसी स्थिति कर दे कि उनमें सतकर्म स्वाभाविक रूप से हो जायें। न कभी पाप कर्म की ओर उनका चित्त जाये और न कभी विचार उनके अन्दर उठें, अथवा उनकी बुद्धि इतनी तीव्र हो जाये कि धर्म के रहस्य को समझने के लिए उन्हें तनिक भी दिमाग़ नहीं लगाना पड़े। ये सब थोथी बातें हैं। भाग्य से अथवा ईश्वर की दया से कोई जिज्ञासु एकदम चाहे इस अवस्था में पहुँच गया हो परन्तु हर एक के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

प्रत्येक साधक की आन्तरिक अवस्था में भेद होता है। कोई शीघ्र ही उन्नति कर जाता है और कोई देर से। कोई बैठते-बैठते ही आनन्द में डूब कर अपनी सुधबुध बिसार देता है और किसी को वर्षों बीत जाते हैं परन्तु वह वैसा ही दिखाई पड़ता है। एक क़दम भी आगे नहीं चल पाता। ये सब बातें अपनी पात्रता और संस्कारों पर निर्भर हैं।

कई लोगों को साधन के समय अद्भुत-अद्भुत प्रकाश दृष्टिगोचर होते हैं। कई प्रकार के नये-नये शब्द अन्तर में सुनाई देते हैं। कई साधकों को कुछ भी अनुभव नहीं होता। वह आँख मूँदे एकदम आगे बढ़ता चला जाता है। किसी को स्वप्न में या ध्यान में नयी-नयी विचित्र बातें अनुभव होती हैं और किसी को कुछ भी नही। इनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने लक्ष्य पर पहुँचने का उद्योग करना चाहिए।

लक्ष्य या आदर्श क्या है, सुनो ! निष्कामता के साथ कर्तव्य समझ कर उसकी (गुरु की) आज्ञा का पालन करना और उसकी इच्छा में प्रसन्न रहना, यही धर्म है।

धर्म के अर्थ केवल कर्तव्य के है। धर्मशास्त्र में इसको दो भागों में बाँटा गया है। एक मानसिक धर्म, दूसरा सामाजिक धर्म। मानसिक धर्म के भी दो भाग है। एक यह है कि जिसका सम्बन्ध बाहरी कर्मों से है, जैसे सन्ध्या, प्रार्थना, जप-तप, कीर्तन, व्रत, यज्ञ, बलिवैशय, दैव, तीर्थ, दान, इत्यादि। इनमें मन इन्द्रियों के साथ काम करता है। इसीलिए ये बाहरी कर्म कहलाते है।

दूसरे आन्तरिक धर्म वे हैं जिनमें केवल मन ही अपना काम करता है, जैसे प्रेम के साथ निरन्तर उसकी याद करना, उस पर दृढ़ विश्वास होना, उससे डरना, संसारी पदार्थों से लगाव कम करना, वैराग्य होना, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहना, ममत्व और तृष्णा का कम करना, भजन के समय मन को उसकी ओर से न हटने देना, सतकर्मों की ओर रुचि होना, दूसरों को नीच और बुरा न समझना, दीन-दुखियों पर दया करना, क्रोध न करना, अपनी किसी वस्तु के लिए अभिमान न करना, इत्यादि। इन सब पर चलना ही पंथ या मार्ग कहलाता है।

जिस प्रकार बाहरी कर्म किये जाते हैं, उसी प्रकार भीतरी कर्मों के करने की आज्ञा है। जब तक मन का व्यवहार ठीक नहीं, तब तक बाहरी कर्म ठीक नहीं हो सकते, जैसे ईश्वर के लिए तुम्हारे मन में पूर्ण श्रद्धा नहीं है, उसका मूल्य तुम नहीं जानते, तो संध्या में सुस्ती हो जायेगी या उल्टी-सीधी जल्दी-जल्दी कर ली जायेगी, और उपासना करने के लिए मन तैयार नहीं होगा।

बाहरी कर्मों के करने में मनुष्य चाहे जितनी होशियारी करे, मन जब तक नहीं संभलेगा, तब तक वह अधिक नहीं चल सकती। इसका गढ़ना और उच्च भाव का बनना आवश्यक है।

नासाग्र ध्यान

(समर्थ गुरु परमसन्त रामचंद्र जी (लाला जी) महाराज के पत्र - अमृत रस से)

सबाल

मेरे एक भाई ने मुझ से ख़त के ज़रिये यह दरियाफ़्त किया है कि जनाब हज़रत क़िबला ने यानी मेरे गुरु महाराज ने किसी वक़्त तुमको यह हिदायत फ़रमाई थी कि दोनों अबरुओं (भोंहों) के बीच में नाक के आख़िरी हिस्से पर देखा करो।

जबाब

ग़ालिबन यह बहुत अर्से की बात है। मुमकिन है जो अल्फ़ाज़ उन्होंने फ़रमाये थे, वह बजिनसही (जैसे के तैसे) याददाश्त से उतर गए हों या उस वक़्त ही इस तरह समझ में आये हों। बहरहाल सुनने और समझने में ग़लती हुई है या इस ख़त लिखते वक़्त इबारत में ग़लती हो गयी हो। सही तालीम और तरीक़ा इस तरह पर है कि यह दो किस्म के शग़ल है। एक को नासाग्र ध्यान (शग़ल नसीरा) कहते हैं और दूसरे को त्रिकुटी ध्यान (शग़ल -महमूदा) कहते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि यह त्रिकुटी ध्यान नहीं है बल्कि भृकुटि ध्यान है क्योंकि दोनों अबरुओं (भोंहों) के दर्मियान की जगह दरअसल त्रिकुटी की नहीं है बल्कि दो दल कँवल, आज्ञा-चक्र , तीसरे तिल, शिव नेत्र , शिव की तीसरी आँख , नुक़्तए सवदा , प्रतिबन्ध की जगह है। अगर यह दोनों शग़ल आँखे खोली हुई रख कर किया जाय तो इसको त्राटक ध्यान भी कहते है।

नासाग्र ध्यान यह है कि नाक की हद यानी नोक पर आधी आँखें खुली हुई रखी जावें और पुतलियाँ आँखों के किसी कोने की तरफ़ न खिसकने पायें, बल्कि आँख के ढेले के बीच में सधी हुई रहें, और नज़र न आसमान की तरफ़ हो और न ज़मीन की तरफ़ हो। आँख से नाक के सिरे को न देखा जाय बल्कि दिल और ख़्याल से देखा जाय। इसके ये मायने हैं कि आँखों को आधा खुला हुआ इस तरह रखा जाय जिस तरह कि नशा पिए हुए आदमी की आँखें पूरी तरह नहीं खुलती और यह ख़्याल किया जाय कि नाक की नोंक को देख रहे हैं और इन्तज़ार प्रकाश का है या मालिक का। जितनी देर तक पलक न झपें उतनी देर तक यह साधन करना चाहिए। एक दम से इस से इस क़दर शग़ल न करें कि आँखों से पानी बहने लग जाए या दर्द महसूस हो बल्कि आहिस्ता आहिस्ता रोज़ाना थोड़ा थोड़ा बढ़ायें।

लोग बड़ी ग़लती इस शग़ल में यह करते हैं कि नज़र से नाक के सिरे को देखा करते हैं और ख़्याल से कुछ ताल्लुक़ नहीं रखत ।इससे नज़र को नुक़सान पहुँचता है। आँखें भेंगी और टेढ़ी पड़ जाती हैं और दिल के शामिल न होने कि वजह से असली फ़ायदा नहीं पहुँचता ।

दूसरा शगल (भृकुटी ध्यान)

यहाँ पर दोनों भोंहों के बीच तीसरे तिल पर ध्यान जमाते हैं और तारे की शकल का ध्यान करते है। आँखों को बंद करके भी यह ध्यान किया जाता है और खोलकर भी। आँखें ज़रा ज़्यादा खुली हुई रखते हैं इस तौर पर कि सामने की कोई चीज़ नज़र नहीं आती, और ध्यान यह किया जाता है कि इन आँखों से हम उस तिल या नुक़्तये-सवेदा को देख रहे है। लेकिन आँखें बन्द करके अच्छा होता है । यह मुक़ाम जाग्रत अवस्था में जीवात्मा की बैठक का है, या यों कहना चाहिए कि नफ़्सनातका के रहने का मुक़ाम है। नख़्शबन्दी मुजद्दिदी पहले क़ल्ब पर इस क़दर ध्यान पुख़्ता कराते हैं कि उसके अभ्यास से फ़ौरन एक दिन यह लतीफ़ा (चक्र) खुल जाता है।इस लतीफ़े के खुल जाने की निशानी यह है कि ज़ाहिरा तौर पर दोनों अबरुओं (भोंहो) की जगह भारी -भारी हो जाती है या चींटी के रेंगने की सी हरकत मालूम होती है। बाज़ को गुदगुदी और बाज़ को दर्द महसूस होता है ।अन्दर की तरफ़ तारा चमकता हुआ नज़र आता है जिसके कि चारों तरफ़ शुआयें (किरणें) बड़ी तेज़ रौशनी सी निकलती हुई और चारों तरफ़ फैलती हुई नज़र आती है। इसके इलावा बहुत सी और निशानियाँ और हालतें हैं । मुख़्तलिफ अभ्यासियों को मुख़्तलिफ हालतें नज़र आती है।

एक अभ्यासी को मैंने देखा था कि उसकी पुतलियाँ आँखों के ढेले से बिलकुल ऊपर को चढ़ जाया करती थीं और इस क़दर ऊपर को हो जाती थीं कि काली पुतली बिलकुल नज़र नहीं आती थी और अभ्यासी की शकल निहायत डरावनी हो जाती थी। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि उनको इस अभ्यास से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। आँखों को खुला रखकर नज़र से यह कोशिश नहीं करना चाहिए कि भोंहों के दरम्यान इस ज़ाहिरी नज़र से देख रहे हैं, ख़्वाह आँख बंद करके या खोल कर । जिन साहिबान को यह अभ्यास बतलाया जावे वही करें । इस तहरीर को देखकर ख़ुद-ब-ख़ुद बिना किसी से दरियाफ़्त किये न करें, वर्ना फ़ायदे के बजाय नुक़सान हो जायेगा। हर शख़्स को पात्र देखकर उसको तालीम दी जाती है । किताब देखकर अभ्यास करना निहायत ख़तरनाक़ है।

राम सन्देश : सितम्बर-अक्टूबर, 2012

परमार्थ पंथ और संत मत के साधन

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

किसी काम में, चाहे वह दुनियाँ के मुत्तल्लिक़ हो, चाहे परलोक के, तरक़ीब दरकार है, और तरक़ीब का होना बिला किसी सिद्धान्त और उसूल के मुश्किल ही नहीं, बल्कि नामुमकिन है।

जब आदमी में कोई ख़ास कमज़ोरी होती है या बहुत सी कमज़ोरियाँ होती हैं, तो वह कमज़ोरी के नुक्स दूर करने के लिए तदबीरें करता है। तदबीरों की सूरतें मुख्य-मुख्य तो कर्म, उपासना जैसी कई सूरतें हो गयीं और होती जाती है। इन्हीं के मेल-जोल और विभाजन से हज़ारों मत-मतान्तर, पंथ और सम्प्रदाय क़ायम हो चुके हैं और न मालूम आगे कितने पैदा होंगे।

अब ग़ौर करके सब सूरतों की तहकीकात (खोज) की जाये तो सिर्फ़ नाम और रूप तो अलग-अलग दिखाई पड़ेंगे, लेकिन हर सूरत में सिद्धान्त और उसूल अपनी जाती (मूल) और असली सूरत में छुपा हुआ मौजूद मिलेगा। और किसी फ़िरक़े (सम्प्रदाय) को, जहाँ तक मेरा ख़्याल है, अगर हठधर्मी को दूर कर लें, तो वह इन्कार नहीं कर सकेंगे कि मूल सिद्धान्तों में कोई ख़ास भेद नहीं है। मतभेद का होना लाज़िमी (आवश्यक) है, क्योंकि हर व्यक्ति की फ़ितरत (प्रकृति) और उसकी आदतें अलग-अलग होती है।

समझने और समझाने के लिए अगर हम लोग सिर्फ़ अपने ही मत के सिद्धान्तों को आगे रखकर ग़ौर और विचार करके नतीज़ों को देखें तो सिद्ध हो जायेगा कि यही चौसाधन सब मज़हबों में घुसे हुए हैं, और कोई फ़िरक़ा (सम्प्रदाय) इनसे बच कर नहीं रह सकता।

हिन्दुओं में वेदान्त का फ़लसफ़ा (दर्शन) सबसे ऊँचा साबित किया गया है। सब क़िस्म के फ़ल्सफ़े वाले बहस कर कराकर और ख़ूब दलीलों को करके आख़िरकार इस जगह चुप होकर बैठते हैं, जहाँ वेद का अन्त हो जाता है, यानी मुरक़्क़िब (**compound**) और मिलौनी चीज़ों से बहुत दूर पहुँचते है। और जहाँ इस मामूली कारोबारी अक़्ल का दख़ल नहीं रहता। इस हालत को महबियत और इस्तगराकी क़ैफ़ियत या फ़ना या लय अवस्था बोलते है। ब्रह्म विधा के जानने वाले इन्ही कैफ़ियातों (दशाओं) और हालतों को द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत के नामों से पुकारते हैं, और इस्लाम धर्म के

सूफ़ी संत इन्हीं कैफ़ियतों को 'तौहीद-वजूदी, शहूदी, एहदियत, वहदत, वाहिदीयत' में तक़सीम (विभाजित) करते है। गरजे कि इन ऊँचे हालतों पर पहुँचने के लिए जो कोशिश की जाती है, वह साधनों के ज़रिये से होती है। उन साधनों की इब्तदाई तक़सीम (प्रराम्भिक विभाजन) सिर्फ़ चार हैं, जिनको साधन चतुष्टय कहते है। बिना इन चार साधनों के कोई अभ्यासी आख़िरी मन्ज़िल पर नहीं पहुँच सकता।

पहला साधन - पहला साधन 'विवेक' या तमीज़ का है, जिसमें हस्त और नेस्त की तमीज़ हो जाती है। इसका मतलब यह है कि इस बात का ज्ञान हो जाता है कि कौन-कौन सी चीज़ें फ़ानी या मिट जाने वाली हैं और तबदील होने वाली हैं और कौन सी चीज़ें ऐसी हैं जो हमेशा क़ायम रहती हैं, नाश और तबदील नहीं होती। इस साधन के आते ही या उसके बाद ही दूसरा साधन आ जाता है।

दूसरा साधन - इस दूसरे साधन को 'वैराग' (नफ़रत-अज-दुनियाँ) कहते हैं क्योंकि जब यह तमीज़ (ज्ञान) हो गयी कि फलां -फलां चीज़ तबदील होने वाली है तो उससे क़ुदरतन (स्वाभाविक) नफ़रत पैदा होने लगेगी। तबियत का लगाव उस चीज़ से हटता जायेगा और नित्य या हमेशा रहने वाली चीज़ की तरफ़ ज़्यादा हो जावेगी।

तजुर्बे (अनुभव) का लाभ - दुनियाँ से नफ़रत या लगाव का कम हो जाना, इन तीन तरीक़ों से होता है। या तो दौलत के पदार्थों को ख़ूब भोग लेने से जब हसरतों का पंजा ख़ूब जकड़ लेता है, उस वक्त तबियत का रुझान कम हो जाता है, या रिश्तेदारों-दोस्तों की विमुखता के साबित होने पर और अपनी मौत का नज़्ज़ारा पेश आ जाने पर, दुनियाँ से तबियत हट जाती है। लेकिन यह तबियत का हटाव पक्का और मुस्तक़िल (स्थायी) नफ़रत नहीं है क्योंकि जब तक यह चीज़ें भोग न ली जावें, उस वक्त तक वासनाओं और ख्वाहिशों का बीज अन्दर दबा हुआ पड़ा रहता है और किसी वक्त और सामान मिल जाने पर फिर उभर खड़े होने का अन्देशा रहता है। बिना मन मरे हुए और साफ़ हुए सच्चा वैराग पैदा नहीं होता। सिर्फ़ तजुर्बा ही एक ऐसा उम्दा ज़रिया है जो असली वैराग पैदा करता है।

अब तजुर्बा और साधन की दो सूरतें जो ऊपर बयान की गयी हैं वह सही तो हैं मगर उनका तरीक़ा व इस्तेमाल भिन्न-भिन्न पंथों ने अलग-अलग तरह से कराया और किया है।

वेदान्त के मानने वालों ने दूसरे साधन को यानी वैराग पैदा होने के लिए यह तरक़ीब अख़्तियार की कि पहले सिर्फ़ यह ख़्याल करना शुरू किया कि माया मिथ्या और नाशवान है, और असली चीज़ ब्रह्म है। इस तरह ख़्याल से यह साधन शुरू किया, और इस ख़्याल को इस तरह पुख़्ता किया और कराया कि किसी तरह यह बात दिमाग और हाफिजे (स्मरण शक्ति) से हट ही न सके। लेकिन यह सिर्फ़ ख़्याली पहलू से किया गया। असली पहलू को कोई ज़्यादा दख़ल नहीं दिया, हालाँकि असली पहलू एक तरह से तो ज़रूर आ गया कि क़ुव्वते ख़्याल के पुख़्ता (इच्छा शक्ति को दृढ़) करने का साधन किया जो बाकई तौर पर सही है।

वेदान्त का तीसरा साधन : षट-संपत्ति - वेदान्त के तीसरे साधन और संतमत के पहले साधन के छः भाग हैं, जिनको षट-संपत्ति (शम दम आदि षटक) कहते है। मतलब यह है कि इनसे छः क़िस्म के फ़ायदे हासिल होते है।

पहली संपत्ति का नाम 'शम' यानि तस्क़ीने क़ल्ब है जिसके मायने हैं कि दिल का ठहराव हो जावे, दिल इधर-उधर न बहके, अपने केन्द्र पर रहे। दिल का ठहराव दो तरीक़े से होता है। वैराग और अभ्यास से। साधू लोग अभ्यास को पहले लेते हैं जिससे की वैराग ख़ुद-ब-ख़ुद हो जाता है, लेकिन वेदान्ती लोग वैराग के ख़्याल को मज़बूत करने को ही अभ्यास मानते है।

नेति मार्ग (मनफ़ी) का तरीक़ा ज्ञानियों का है, जो कि किसी तरह मुश्क़िल है। एती मार्ग में अभ्यास, योग और उपासना सरल है, क्योंकि नेति मार्ग में हर चीज़ छोड़ने का अमल किया जाता है और एति मार्ग में क़बूल और अख़ितयार किया जाता है, यानि किसी ख़ास चीज़ में दिल को लगा लेते

है। जब इस अमल में दिल एक तरफ़ लग जाता है तो निहायत आसानी से बाकी और चीज़ों से क़ुदरती तौर पर हट जाता है, और उनकी तरफ़ मुख़ातिब (आकर्षित) नहीं होता।

'शम' के अतिरिक्त पाँच सम्पत्तियाँ इस प्रकार हैं -

1। बाह्येन्द्रिय वत्तियों का निरोध करके प्रत्येक इन्द्रिय को उसके व्यापार से विमुख करना 'दम' यानी दमन कहलाता है।

2। इन्द्रियों का दमन हो जाने पर विषयों की ओर उनकी पुनरावृत्ति न होने देने को 'उपरति' कहते है। एक बार निरोध करने पर भी बार-बार विषयों की ओर दौड़ना इन्द्रियों का स्वाभाविक धर्म है। अतएव सदा उनकी लगाम खींचते रहना चाहिए, इसी को उपरति कहते है।

3। हर अच्छी-बुरी बात को बर्दाश्त यानी हमेशा द्वन्द सहन करने की शक्ति को 'तितिक्षा' कहते है।

हानि-लाभ, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, राग-द्वेष, आदि द्वन्द कहलाते है। स्नान-सन्ध्यादि कर्म करते समय गर्म-सर्द की जो बाधा होती है उसकी कोई परवाह नहीं, हमारा कर्माचरण पूरा होना चाहिए, तथा प्रारब्ध-वेग से उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख हमें भोगने ही चाहिए, उनसे कोई बच नहीं सकता। इस प्रकार की शीतोष्ण, सुख-दुःखादि के सहन करने का शक्ति को 'तितिक्षा' कहते है।

4। चौथा साधन 'समाधान' है। सम्पूर्ण विषयों में सदा शांत-वृत्ति रह कर संत-वाक्य-श्रवण में अत्यंत आदर-बुद्धि रखना 'समाधान' है।

5। पाँचवा साधन 'श्रद्धा' है। उसकी व्याख्या यह है कि सद्गुरु के उपदेश ओर सत्पुरुषों के किये हुए महाकाव्य विवरण पर पूर्ण विश्वास रखना - उनमें सन्शियत बुद्धि कभी न होना 'श्रद्धा कहलाती है।

मज़हब और तहक़ीक़ात

आम तौर पर लोगों ने मज़हब को सिर्फ़ अक़ायद के मजमुआ का जाब्ता समझ रखा है जिसमें अक़ल का ज़रा भी दख़ल नहीं है। यह सख़्त ग़लती है। यहाँ तक तो हम मानने को तैयार नहीं कि इन्सान में विश्वास और अक़ीदे की हद सिर्फ़ इतनी ही नहीं कि जो कुछ कहा जाय, उस पर ख़वामो ख़्वाह यक़ीन कर लिया जाय और अक़ल अगर उसके बरख़िलाफ़ फ़तुए दे, तो उसकी तरफ से वग़ैर समझे बूझे यों ही मुँह मोड़ लिया जाय, यह विश्वास ख़तरनाक है। बल्कि हमारी समझ में उसको विश्वास समझना ही ग़लती है। विश्वास दिल की यक़ीन की उस हालत का नाम है, जिसको कि वह हर तरह से सही समझता है। मुमकिन है कि उसके सारे पहिलू यक़ीन निगाह के किसी तरह पर सामने न हों। मगर क़यास और ज्ञान फिर भी उसको एक हद तक पुख़्तगी और मज़बूती की हालत में क़ायम कर देता है। इसलिए हम विश्वास उसको कहेंगे जिसकी बुनियाद इन्सान की आम कुब्बत-तमीज़ और इद्राक फ़हम पर हो। और जिसके हुस्न पहलू पर वह कमतर रौशनी डाल सके। उसके मुतअल्लिक़ कम से कम उसके क़यास की ताक़त, जो समझ बूझ वग़ैरह की दूसरी शकल है, कुछ न कुछ विचार सके, और फिर यह कि इन्सान की तबीयतें मुख़्तलिफ़ हैं, और ताबियतों के इख़्तिलाफ़ के साथ उसकी अक़ल व तमीज़ वग़ैरह तकमील के मदारीय होते हैं, और फिर ये जहाँ और जिनमें यह बली मौजूद होते हैं उन पर किसी ख़ास उसूल को मानने और सही तस्लीम करने के लिए, जब्र करना सर्राही ज़ुल्म और सख़्ती वग़ैरह से मुमकिन है कि उसकी ताक़त और अक़ली तमीज़ को ज़ोफ़ वग़ैरह पहुँचे, और वह बतदरीब इन्सानियत के दर्ज़े से गिरकर हैवानियत के दर्ज़े में उतर आवे, मज़हब का यह कभी मक़सद नहीं है। बल्कि उसका मक़सद हमेशा से यही है कि इन्सान की तजर्वात खव्वाह उस दिल से मुतअल्लिक़ हों या दिमाग़ से, रोज़ व रोज़ वसीय होती चलें, और जिन उसूलों को उसने अपनी ज़िन्दगी का रहवर या रहनुमा बना रखा है, उनको वह आहिस्ता -आहिस्ता हक्कुल्यकीन और साक्षात्कार के दर्ज़े में पहुँचाता हो, असलियत और सच्चाई वग़ैरह की ज़िन्दगी बनती जाए। जहाँ बच्चों की तरह सादगी ताबंदी और सादा तबज्जुह ही

और सादा मिज़ाज़ी वग़ैरह मौज़ूद हो, वहाँ हमको ज़बान खोलने की ज़रूरत ही नहीं है, बच्चों के विश्वास पर नुक़्ता चीनी व हरफ़गीरी वग़ैरह नहीं की जा सकती, और न करना चाहिए, मगर हर इन्सान बच्चा नहीं है, और न वह सब बच्चे की हालत में है। जिनके अक़ली क़वा ज़्यादा नशवोनुमा वग़ैरह माफ्ता नहीं हैं उनको मौक़ा मिलना चाहिए कि वह व तौर ख़ुद अस्लियत को समझें और कांट छांट वग़ैरह करते हुए हर बात को अक़ल तराज़ू पर तौलते हुए और उनसे मुस्तफ़ीज़ होते हुए चलें, ताकि ज़िन्दगी का मक़सद उनके हाथ आवे।

जो मज़हब कि अपने पैरोकारों की आँख में पट्टी बाँधे और उनको अक़ल व इल्म की वरकात से महरूम रखने का इहत्माम करे, वह न तो मज़हब ही है और न उस मज़हब की वरकात हासिल करने की उम्मेद की जा सकती है। दुनियावी कारोवार के सिलसिले में हमको हमेशा अक़ल व तमीज़ वग़ैरह ही कदम कदम पर काम की हिदायतें देंगी, हम विलत्वा जो काम करते हैं, सोच व समझ वग़ैरह के साथ करते हैं। लोग हमको कहते व सुनते वग़ैरह यही रहते हैं कि वगैर सोच विचार किये कोई काम न करो और जब यह बात तमाम दुनियावी और जिसमानी वग़ैरह मामलात पर सादिक आती है, तो यह अकल सलीम कैसे बाबर कर लेगी कि दीनी और रूहानी वग़ैरह ताल्लुक़ात के बारे में खव्वाम खव्वाह हम वग़ैर सोचे समझे ही यक़ीन कर लिया करें, और दिल को उसके सही तस्लीम करने के लिए मज़बूर किया करें। इस तरह इन्सान फिर इन्सान कैसे रह सकता है ? हमको अक़ल यों ही नहीं मिली हैं, उसका कुछ न कुछ मतलब भी है। दुनियाँ का जो इल्म हासिल होता है उसकी तीन क़िस्में हैं। एक इन्द्रियों का इल्म, जो कि सर, मुँह, आँख, नाक, कान, वायु और लम्स के मुताल्लिक है। दूसरा क़यास और गुमान वग़ैरह जिनकी बुनियाद में भी हवास और इन्द्रियों का इल्म होता है। और फिर तीसरा मुतक़दमीन, व पेशवापान दीन की शहादत जिनकी जड़ से ज़्यादातर इन्द्रियों वग़ैरह में है। इन तीनों इल्मों की बुनियाद इन्सान के मन और बुद्धि वग़ैरह में रहती है, क्योंकि बुद्धि सर चश्मा है, जिसकी अटारी पर इन्सान का दिल है और यह पाँच इन्द्रियाँ उसकी छोटी छोटी नालियाँ हैं, यहाँ पर भी अकल

दिल वग़ौरह के सहारे की ज़रूरत है क्योंकि वग़ौर उनके इन्द्रियाँ कुछ काम नहीं कर सकती। उनको इन्द्रिय ज्ञान कहते हैं कि जो सुनने वग़ौरह ही से हो सकता है। पस जब इन्सान को इन्द्रियाँ मिली हैं, तो उनको भी सही तौर पर इस्तेमाल करे, और उनके ज़रिये से इल्म हासिल करे।

कयास और अनुमान वगौरह ज्ञान की दूसरी बातें हैं जो इन्द्रियों की अगले तजर्बात पर मुवनी है। और वह उनकी मदद से ख़ास एक नतीज़े पर पहुँचने के काबिल होता है। दरिया को देख कर पानी बरसने का गुमान होता है। इसलिए यह मुमकिन है कि ज्ञान सही हो सकता है। मगर यह भी मुमकिन है कि जो चीज़ें धुयें की शक्ल में बरामद हो रही हो वह गर्मी के अमल की वजह से हो। अनुमान ज्ञान वगौरह की बहुत सी इकसाम हैं जिनकी तशरीह तवालत से ख़ाली नहीं है।

तीसरा इल्म शब्द प्रमाण है, यानी सच्चे आदमियों की शहादत जो तजर्बेकारअकल और सिर्फ दुनियाँ के काम (कर्म) व करो वगौरह आजमूदा होते हैं, कुछ परमार्थ के राज से वाकिफ़ होते है। उनको हर तरह के तजर्वे हासिल हैं, झूठ नहीं बोलते, क्योंकि ऐसा करने में उनको कोई फ़ायदा नहीं है। उन लोगों में मेरा, तेरा, अपना, वगौरह नहीं होता। उनकी ज़िन्दगी सच्चाई की ज़िन्दगी है। उनके तजर्वात वसी हैं, वह जो बात अगर कहते भी हैं, पते की कहते है। इसलिए वसाऔक़ात इनकी बात सही तस्लीम कर ली जाती है। मगर उसको भी अन्धविश्वास के साथ सही तस्लीम करने की ज़रूरत नहीं है। इन्सान को हर तरह में वहाँ भी किसी हद तक अपनी इन्द्रिय ज्ञान और अनुमान व प्रमाण से मदद लेकर उसको सही यत्न कर उससे काम लेना चाहिए और शब्द प्रमाण की अहिमियत बहुत है, हमको उसी तवके में महदूद उम्र की ज़िन्दगी मिली है, और यह मुमकिन नहीं कि हम इसमें बहुत कुछ जाती तज़र्बात और मुशाहिदात वगौरह के साथ, ज़िद्दैन इल्म हासिल करें। मगर उम्र की कमी की हालत का ख़्याल करने से यह नादानी होगी कि हम औरों की बातों से फ़ायदा न उठावें। बहुत सी बातें ऐसी भी होती हैं कि तबियत की नमौज़ूनियत और काबिलियत व कवूलात की अदम मौज़ूदगी में उनका पूरा पूरा इल्म हमको नहीं हो सकता, उसके लिए बड़ी उम्र दरकार होती है। जो हर शख़्स के हिस्से में नहीं आती।

इसलिए यह एक किस्म की नादानी होगी, अगर उनके बयानात, कलाम और पुश्तहापुश्त की वग़ैरह अनदोखता, इल्मी, ज़खीरा की तरफ़ से बे परवाह बनकर उनसे फ़ायदा ही हासिल न करें। फ़ायदा ज़रूर हासिल करना चाहिए। मगर अपने अकाली मह्सूसात और दिली ज़ज्बात से भी पूरी पूरी मदद हासिल करनी चाहिए। अगर किसी की कोई बात समझ में नहीं आती है, तो उसको विचार करने के हवाले कर देना चाहिए। वक्त आयेगा, जब उनसे फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिल रहेगा। जहाँ तक की बात समझ में आवे क़बूल करो औरों को आयन्दा फ़ायदा की ग़र्ज़ से पस अन्दाज़ रखो, उक़वा -नगू और दिल्ली लताफ़त की तकमील है, सब कुछ हो रहेगा। उन हासिल शुद और मालूम की हुई बातों पर ही इस कदर ज़ोर नहीं दिया जाता है। जो कुछ जोर दिया जाता है फिर वह अपनी निरख व परख वग़ैरह और अपनी जाती सोच विचार पर ही दिया जाता है। क्योंकि उसकी मदद से ही इन्सानी ज़िन्दगी का शुमार वर्षों इस तबके पर काम कर रही है उसके तजर्वात वसीय हैं और क़ाबिल क़दर है। यह तीन तरह के इल्म हैं जो इन्सान से मख़्सूस है और उनकी चोटी पर उसकी अपनी अकल और दिल वग़ैरह की नशिश्त है, जो निज अनुभव कहलाता है। और उस ही से ज़िन्दगी के बेहतरीन मक़ासिद की तकमील होती है। तावक्ते कि औरों का तज़र्बात अपने तजर्वे न हो जावें उन पर इनहसार करना नादानी होगी। मज़हब की यह तालीम नहीं है और न कभी होगी कि तुम नाहक अंध विश्वास में पड़कर अपने आप को जानवरों की हालत में पहुँचा लो। फिर मज़हब से फ़ायदा ही क्या हुआ ? मज़हब अगर दुनियाँ में सबसे कीमती चीज़ है तो उसके मफाद और उसकी ख़िदमात भी सबसे ज़्यादा क़ीमती होगी। मज़हब इन्सान को वा कमाल बना देता है। और फिर वह इन्सान से फौकुलइन्सान और पुर मुकम्मिल इन्सान बना देता है। मज़हब तरक़्क़ी की जहनी सीड़ी होने, इन्सान को उन पर चढ़ने और नाम हक़ीक़त तक रसाई हासिल करने दावत देता है। मगर मज़हब का यह उसूल है कि इन्सान कुछ न पहुँचे, यों ही अनाप, शनाप के माहौल में बराबर ही बन्द पड़ा रहे तो यह हैवानियत महज़ होगी।

राम सन्देश : नवम्बर-दिसम्बर : 2003

मार्गदर्शक कहलाने वाले सूफ़ी व साधुओं की कसौटी

(आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी (लालाजी) महाराज)

अगर तमाम उम्र सूफ़ी और साधु लोग दूसरे लोगों को उपदेश करते रहे और राह, मन्ज़िल और ठहराव की जगहों से नावाकिफ़ रहे तो उनकी मिसाल ऐसी है जैसे बूढी औरतें जिनको तमाम उम्र के कच्चे तजुर्बे और किसी-न-किसी तरह चन्द दवाओं के नाम याद हो गए हैं और वो इलाज किया करती हैं, या जो लोग कि थोड़े -बहुत पढ़े लिखे हैं और अमृत-सागर और इलाजुलगुर्बा की किताबें देखकर इलाज करने लग जाते हैं और लोगों का नुकसान करते रहते हैं।

बरख़िलाफ़ इसके वह साधु महात्मा जो मन्ज़िल और मुक़ाम और राह के ठौर ठिकाने से ख़ूब वाकिफ़ होते हैं वह ऐसे होते हैं जैसे जानने वाले वैद्य और हक़ीम जिनको कि anatomy (यानी बदन के अन्दर के अंग-प्रत्यंग) का इल्म है और बीमारी की सब किस्में जानते हैं और उनको यह मालूम है कि किन वजहों से बीमारियां पैदा होती हैं और फिर उनकी अलामात निशानियाँ (symptoms) और तशखीसें, रोग की पहिचान (diagnosis)और उनके अलहदा इलाज ख़ूब मालूम हैं, इनके अलावा पुराने मशहूर हकीमों के तजुरबे और हाल की तहक़ीक़ात और हाल की मालूमात की ताज़ा -तरीन (latest)खबर रहती है।

दूसरे तौर पर, इस तरह समझना चाहिए कि जो सूफ़ी या साधू इल्म लतायफ़ के पूरे वाक़िफ़कार हैं उनकी मिसाल ऐसी है जैसे जंगलों में रास्ता बताने वाले जो हमेशा वहीं रहते हैं और जंगल की सब ऊँची -नीची राहों से वाक़िफ़ हों और आबादी और ख़तरे की जगहें भी ख़ूब जानते हैं।

बरख़िलाफ़ इसके इस इल्म से नावाकिफ़ सूफ़ी ऐसे हैं कि जिस तरह चन्द आदमी रास्ते से जंगल में भटक गए हों और रास्ते से अलग होकर बेरास्ते होकर भटकने लगे हों। उनमें से कुछ तो सर टकरा-टकरा कर मर गए क्योंकि उनका न कहीं इरादा था और न कोई राह जानी हुई थी और बाज़ लोग किसी न किसी तरह जंगल से निकल आयें।

जब मुद्दत के बाद अपने घर वापस आये तो हर शख्स ने अपना हाल अलग-अलग बयान किया और पूरी बात किसी ने भी नहीं कही। बल्कि एक की बात दूसरे की बात से बिलकुल खिलाफ़ थी।

अब इन सब में से कोई भी ऐसा नहीं है जो एक दूसरे की बरख़िलाफ़ी को दूर कर सके और असल तत्व को बतला सके और जो जो बरख़िलाफियाँ हैं उनकी ज्यों की त्यों अपने-अपने मौके और जगहों पर रख कर द्वेष-भाव को दूर कर दें। सुनने वाले हैरत में रह जाते हैं कि कोई बात उनकी समझ में नहीं आती और वहम और दुविधा के शिकार हो जाते हैं।

इसलिए जो लोग 'अहलेतमकीन ' हैं यानी जिनको साक्षात्कार होने की स्थिति प्राप्त हो गयी है, वे लोग हैं जो अवतारों के वारिस और क़ायम मुकीम (स्थितप्रज्ञ) कहलाने के क़ाबिल हैं। अगर कोई आदमी इन बुज़ुर्गों की राह पर चलना चाहे तो दरअसल उनकी राह बिना इल्म लतायफ़ यानी कमलों (चक्रों) का ज्ञान हासिल किये नहीं मिल सकती।

सीधा रास्ता वह है जिसमें न कोई तक़लीफ़ है और न भटकाव, और जो बिना चक्रों और कमलों के ज्ञान के नामुमकिन और बेफ़ायदा भी है। ग़रज़ कि इल्म-लतायफ़ यानी राह और मंज़िलों का ज्ञान परमात्मा की बड़ी देन है, जैसा कि ऊपर बयान किया गया है, जो ईश्वर ने आखिर ज़माने के बुज़ुर्गों को दी है।

अहले सलूक या पन्थाई दो किस्म के होते हैं। इस हिसाब से जो रास्ता 'ज़िक्र' यानी जाप, शब्द - अभ्यास भजन का इस वक़्त रायज़ (प्रचलित) है वह दो तरह पर है और 'फ़िक्र' यानी मनन, चिन्तन, स्मरण, मराकबा भी दो तरह का होता है ।

पहली किस्म तो यह है कि एक शख्स को परमार्थ हासिल करने का शौक़ पैदा हुआ। उसने जिस तरह बन सका, एक रास्ता पकड़ कर चलना शुरू किया। आखिर में किसी वक्त उसको शांति मिली और ऐसे असर उससे ज़ाहिर हो गए या होने लगे कि दूसरो को सिखलाने की क़ाबिलियत उसमें मालूम होने लगी और दूसरों को बतलाने लगा।

अब जिस जगह या मुक़ाम पर उसको पहुँचकर शांति नसीब हुई थी, उसी जगह और मुक़ाम तक का इशारा उसने अपने मुरीदों (शिष्यों) को दे दिया और इसका मतलब यह है कि इसके आगे की ख़बर उसको नहीं होती और सिवा इस कमाल के जो उसको हासिल हो चुका है, कोई दूसरा कमाल उसमें नहीं है ।

बस उसके मुरीदों ने उसकी बतलाई हुई बात को याद कर लिया और उस पर अपना पूरा भरोसा करके आगे की तलाश से हाथ उठाकर इत्मीनान करके बैठे रहे और उन्होंने यह समझ लिया

कि बस अब आखिरी कमाल और दर्ज़ा यही है - इसके सिवा अब कुछ और हासिल करने को बाक़ी नहीं रहा।

अक्सर इस किस्म के साधू सूफ़ी सिर्फ एक ही कमाल और निस्बत को रखते हैं। मिसाल के तौर पर यह समझ लो कि किसी ने महज़ क़ल्ब के लतीफ़े पर उबूर हासिल कर लिया या लतीफ़ेरूह या सिर या ख़फ़ी या अख़फ़ा या नफ़्स नातका वग़ैरा में किसी एक या दो पर काबू पा लिया। हिन्दू साहबान (भाई-बंधु) इस तरह समझ लें कि एक साधु ने हृदय चक्र को बेध लिया या भृकुटि स्थान और आज्ञा-चक्र को पार कर गया या ज़्यादा -से-ज़्यादा त्रिकुटी के मुक़ाम को तय कर लिया, तो यह काफी नहीं है क्योकि आगे अभी बहुत मुक़ाम तय करने को बाकी हैं।

ऐसी सूरत में किसी अभ्यासी को महज़ शौक़ और बेकरारी -तलाश और तड़प की कैफ़ियत हासिल होकर रह गयी और उसके आगे न बढ़ा। बाज़ों को जो रूहों से मुलाक़ात या फ़रिश्तों और देवताओं की मिसाली शक्ल या विराट देश से सम्बंधित होकर रह गया और आगे न चले या शब्द अभ्यास की मायावी सूरतों पर अभ्यास हो गया, असल शब्द तक रसाई (पहुँच) न हो पायी।

इस सूरत में साधुओं और सूफ़ियों का तमाम लतीफ़ों यानि चक्रों में से एक या दो लतीफ़ा यानि चक्र मुहज़्ज़िब (प्रज्वलित) हो जाता है, बाक़ी सब उसी तरह अन्धकार और मंद गति में रह जाते हैं। यह कमाल नहीं है। अगर तुम्हारे सब लतीफ़ों का कमाल किसी तरह तुम्हारे सामने शक्ल बन कर आ जावे तो तुम अगर देख सकोगे तो यह देखोगे कि तुम्हारा आधा चेहरा स्याह है और आधा सफ़ेद या धब्बेदार।

हमारे बुज़ुर्गों में से ज़्यादा तादाद में ऐसे बुज़ुर्ग गुज़रे हैं कि जो शख़्स सामने आता था उसका हाल और अन्दर सूक्ष्म शरीर का हाल फ़ौरन दरयाफ्त करके बता देते थे कि फलाँ शख्स का फलाँ लतीफ़ा ज़ाकिर (चक्र जाग्रत) है और फलाँ शख्स का दूसरा और उसके मुकाम और सूक्ष्म शरीर की

सूरत देख लेते थे। हमारे मुर्शिदना (गुरुदेव) ने एक मरतबा, जब वह एक मकान में तशरीफ़ ले गए, तो यह बतला दिया कि इस ख़ास मुक़ाम और जगह में फलाँ साहब बैठ कर ज़िक्र शग़ल किया करते हैं और उस मुक़ाम पर फलाँ। अब ख़्याल फरमायें कि आपका इल्म लतायफ़ किस दरजे बारीक और लतीफ़ (सूक्ष्म) है।

ऐसे सूफ़ी और साधू जिनका एक आध लतीफ़ा ज़ाकिर हो गया या कोई मुक़ाम जाग्रत हो गया और एक निस्बत हासिल हो गयी, अपने आपको कामिल समझ कर यह डींग मारा करते हैं कि शरीयत (धर्मशास्त्र) मौलवियों के लिए है और खुश्क ज़ाहिदों के वास्ते है, हम जिस मुक़ाम पर पहुंचे हैं वहाँ शरीयत का कुछ दख़ल नहीं है। अफ़सोस है कि बिना कुछ लतीफ़ों और मुक़ामों के तय किये हुए शरीयत अधूरी और नाक़िस बेकार रहती है।

असल और हक़ीक़ी शरीयत पर तब पहुँचता है जबकि कुल मुक़ामात तय हो जाएँ। बिना शरीयत यानी धर्मशास्त्र के फ़क़ीर और साधू नाक़िस है। बड़े-बड़े मस्त फ़क़ीरों और साधू महात्माओं ने अब तक इस मुअम्मे (भेद) को नहीं समझा है कि शरीयत क्या चीज़ है। इसलिए जिनका यह लोक नहीं सम्भला उनका परलोक क्या सम्भलेगा ?

जो शौक़ीन लोग अभ्यास करते हैं उनकी पहली किस्म की क़ैफ़ियत बयान में आ चुकी है। अब दूसरी तरह चलने वालों की बताई जाती है। दूसरी तरह ज़िक्र और फ़िक्र यानी भजन और स्मरण के अभ्यास को इस तरह हासिल किया करते हैं कि क़ामिल और पूर्ण संत सद्गुरु के बताये हुए अभ्यास को उनके सत्संग में जाकर करते है। यह संत सद्गुरु वे होते हैं जिनकी तारीफ़ संत मत की किताबों में लिखी हैं और जिनको उन दयालु और मालिकेकुल ने अपनी दया की मौज़ से दयाल देश से सीधा इस जंगल के जीवों का उद्धार करने और इस भव-सागर से पार उतारने की ग़रज़ से समय-समय पर भेजा है।

पहले गुज़रे हुए महात्माओं से जो-जो बातें और मुक़ामात तय न हुए और बाक़ी रह गए वह अब इन आख़िरी ज़माने के बुज़ुर्गों पर उतारे गए, ताकि कोई कसर तालीम में बाक़ी न रह जाये और मालिकेकुल का जो इरादा था वह इनको भेज कर पूरा किया गया। जो बातें कि पूर्णगति और मुक़्क़मिल बनाने के लिए, दरकार थीं वह इन बुज़ुर्गों के हृदय में बराह-रास्ता उतारी गयी। पन्थाइयों और राह चलने वालों को बराबर सिलसिले और तरतीब के साथ मंज़िलों को तय कराते आये और हज़ारों-हज़ारों तालिबों और जिज्ञासुओं को इन महात्माओं ने क़ायदों की पाबन्दी ,जैसी कि होनी चाहिए थी, कराई और खुद की है। हर दर्द की दवा और हर आफ़त का इलाज इनको मालूम रहता है।

इस तरह पर ऐसे मुक़्क़मिल उस्तादों से सीखे हुए लोग असल मुक़ाम और पद को हासिल करते हैं। किसी दरमियानी मंज़िल और रास्ते पर इन लोगों का अटकाब नहीं होता और न रास्ते की किसी मंज़िल में अटक कर अधूरे रह जाते हैं, लेकिन अगर इनको लातायफ़ और मंज़िलों का तफ़सीलवार (ब्योरेवार) ज्ञान नहीं हो पाता तो यह ज़रूर है कि इनको चन्द तरह के नुक़सान पहुँचने का डर होता है।

"जीवन चरित्र " -- (रामाश्रम प्रकाशन) से चयनित अंश

सिद्धान्त व शिक्षा

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज)

सत्संगियों के लिए महात्मा जी की शिक्षा वास्तव में प्रेम की शिक्षा थी। प्रत्येक से प्रेम करना और प्रत्येक को प्रेम की डोर से बांधे रखना , यह उनका तरीक़ा था । महात्मा जी का कथन था कि यदि शिष्य गुरु से प्रेम करता है , उनका सत्संग करता है और उनके आदेश का पालन करता है तो इसी से उसकी अध्यात्मिक पूर्णता (तकमील) हो जायेगी । विशेष व्यक्तिओं को महात्मा जी ने कोई शिक्षा नही दी । केवल इतना था कि वे सत्संग में आते रहें और उनका उद्धार हो जाए परन्तु यह तरीक़ा केवल उत्तम अधिकारियों के लिए था। आम तौर पर जैसी शिष्य की पात्रता होती थी उसी के अनुसार उसे शिक्षा देते थे। किसी को सुरत शब्द की शिक्षा देते तो किसी को दिल के जाप (ज़िक्र खफ़ी) की और किसी को वज़ीफ़ा और किसी को कुछ कर्म बतला देते थे । परन्तु अधिकतर गुरु से तबज्जोह लेने, सत्संग करने और दिल के जाप करने पर ज़ोर देते थे। अपनी शक़्ल का ध्यान करने को बहुत ही कम बताते थे। महात्मा जी हृदय चक्र (क़ल्ब के मुक़ाम) पर ॐ शब्द का जाप कराते थे। उनके सत्संग के प्रताप से और तबज्जोह से चक्र (लतीफे) जागृत हो जाते थ , उनमें अनहद शब्द सुनाई देने लगता था। ऐसा होने पर आदेश देते थे कि इन्हीं को सुनते रहो और इतना अभ्यास करो कि उठतें -बैठते , सोते -जागते यहाँ तक कि एक सैकिण्ड के सांठवे हिस्से तक भी इससे ग़ाफ़िल मत रहो

महात्मा जी का कथन था कि फ़क़ीरी की तीन शर्तें हैं - ।। इल्लत, यानी उसे कोई शारीरिक व्याधि होनी चाहिये । 2।क़िल्लत, यानी उसे रुपए की कमी होनी चाहिये । 3।ज़िल्लत, यानी लोग उसकी निन्दा करें। इनसे अहँकार दबा रहता है और घमंड नहीं होता ।

जिसने अपने मन को मार लिया वह दुनियाँ का बादशाह है। इससे कठिन काम दुनियाँ में कोई नहीं है। सदाचार पर वह बहुत ज़ोर देते थे। उनका कहना था कि जब तक सदाचार पूर्णतया ठीक नहीं हो जाता आत्मानुभव नहीं होता। ज़्यादा रियाज़त (अभ्यास) और बजायफ (वज़ीफ़ा पढ़ना) के पक्ष में बीच का रास्ता पसन्द करते थे। उनका कहना था कि दिल का अभ्यास सबसे ऊँचा है, इसका असर शरीर पर पड़ता है। दिल को क़ाबू में रखना और उसे तरतीब देते रहना वही असली अभ्यास है।

महात्मा जी का कथन था कि गुरु हर मनुष्य को करना चाहिये लेकिन गुरु बहुत देख -भाल कर करना चाहिये। एक बार गुरु धारण कर लेने पर अपने आप को पूरी तरह उसके आधीन कर देना चाहिये जिस तरह मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है।

नैमत (प्रभु की देन) का शुक्रिया यह है कि उसका उचित प्रयोग किया जाये और वह उचित प्रयोग यह है कि ऐसे कर्मों का त्याग करदो जिनसे प्रभु की देन में गिरावट आती हो और वह कर्म अपनाओ जो इस नैमत को स्थायी बनाने में सहायक हों।

सत्संग ऐसे लोगों को अपनाना चाहिये जो वास्तव में पूर्ण सदाचर से अपना जीवन निर्वाह करते हों। ईश्वर प्रेम से उनका दिल सराबोर हो और दूसरों को प्रभावित कर सकते हों।

सांसारिक बाधाएँ परमार्थ में ईश्वर की तरफ़ से देन होती है। वे मुबारिक हैं। नहीं मालूम कौन -कौन से भेद उनमें छिपे रहते हैं। बहुत से आँतरिक अनुभव इन पर निर्भर होते हैं।

जिस व्यक्ति की जितनी विवेक शक्ति तीव्र है उतनी ही उसकी आत्मा स्वच्छ हैं।

स्वाध्याय की अपेक्षा महात्मा जी अभ्यास पर अधिक ज़ोर देते थे। कुछ दिन अभ्यास कराने के बाद उसी अभ्यास के विषय में या तो स्वयँ मौखिक बता दिया करते थे या किसी पुस्तक में से पढ़कर सुना देते थ। महात्मा जी का कथन था कि जब तक अभ्यास से मन शुद्ध न कर लिया जाये तब तक

किताबों के पढ़ने से कोई अधिक लाभ नहीं होता बल्कि अधिकतर अभ्यासी रास्ते से दूर जा पड़ते है। उनको झूंठा अभिमान अपनी विद्या का हो जाता है।

अपने प्रेमी -जनों के लिए महात्मा जी का उपदेश था कि स्वामी (मख़्दम) बनने से सदा बचना, सेवक (ख़ादिम) बनकर दूसरों की सेवा करना। ऐसे वायदा कभी न करना कि इतने समय में अमुक अनुभव कराऊंगा। सदा निस्वार्थ सेवा करना। ये सब अहंकार की बातें हैं

भोजन पेट भर मत करो। थोड़ी कमी रह जाए। इससे अभ्यास अच्छा बनता है। जो लोग धर्म की कमाई नहीं खाते उनका कश्फ़ (अनुभव) कभी सही नहीं होता।

परमसंत पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी (लालाजी) महाराज की अमूल्य शिक्षा

आत्मा या रूह जिसका वर्णन बार-बार आया है, इस श्रष्टि में सबसे अनोखी चीज़ है। यह ही सबसे महान एवं सार सत्य है ।यह उस सूर्य की किरण या उस समुन्द्र की एक बूँद है जिससे हम अलग नहीं हैं और वही आत्मा का भण्डार है - वही जीवन का केन्द्र एवं स्रोत है और इसी केन्द्र से विलग अथवा दूर हो जाना ही वास्तव में हमारे दुखों का कारण होता है । आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द के अभ्यास से आशय यह है कि हृदय में इस केन्द्र का इष्ट बांधकर अर्थात उस आदर्श को हृदय में स्थित करके संत सद्गुरु से भेद (यानी अभ्यास का तरीक़ा) मालूम करके इसके खोज की चेष्टा की जाये। यदि किसी तरह तुम्हारे अन्तःकरण में यह भाव पैदा हो जाये कि सतपुरुष मालिक हमारा केन्द्र है और हम उससे निकले हैं तो तुम में प्रेम के भाव प्रस्फुटित होकर तुम्हें विशेष प्रकार की अवस्था प्रदान करेंगे, जिससे स्वतः ही आत्मा तथा माया आदि की समझ आती जाएगी।

यह केन्द्र पूर्णतः आत्मिक है और शुद्ध चेतन है। इसमें नाम मात्र को भी काल और माया नहीं है। ज्यों- ज्यों तुम्हारे आवरण उतरते जायेंगे और आत्मिक प्रकाश की अनुभूति का अवसर मिलता जायेगा, वैसे ही वैसे इसी जन्म में प्रेम प्राप्त होता जायेगा। जिन लोगों में अब तक आध्यात्मिकता जाग्रत नहीं हुई है, वे इस केन्द्र से बहुत दूर हैं। जिनके आवरण उतर गए हैं वे अपेक्षाकृत उससे अधिक निकट हैं। जितना उस केन्द्र से बिलगाव और दूरी होती जाएगी उतने ही आत्म-पथ पर माया के आवरण पड़ते जायेंगे और जितना अधिक केन्द्र से निकट आते जायेंगे उतनी ही आत्मिक आनन्द की अनुभूति बढ़ती जाएगी।

नीचे स्थूल मण्डल है और ऊपर सूक्ष्मता तथा पवित्रता की स्थितियाँ हैं। मनुष्य मध्यावस्था में माया के मण्डल में है। आज हमारी-तुम्हारी कुछ भी अवस्था हो परन्तु चूंकि हम उसके अंश हैं, हमारे लिए कभी मृत्यु नहीं है और न ही हम जीवन की देन से वंचित हो सकते हैं। हमें जो कुछ दुखों की

अनुभूति है वह इन सब माया के आवरणों के कारण है और जैसे ही ये आवरण हटे हमको अपने असल रूप की समझ आयी, तब हम सुखी हो जायेंगे और उस समय हमारे सुख की कोई सीमा नहीं रहेगी। तब पूर्ण ज्ञान एवं शक्ति का केन्द्र दृष्टिगोचर होता है। जो जितना इस केन्द्र के निकट पहुँचेगा, वह उसी ढंग से शक्तिशाली और ज्ञानी होता जायेगा। यह एक सच्चाई है जो हर अभ्यासी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

सुरत या आत्मा की दिव्यता और कार्यकलाप की महत्ता सभी संसार मानता है। इन्सान बुद्धि का पुतला कहा जाता है। वह जिस ओर भी ध्यान करता है, उसी ओर आश्चर्यजनक परिणाम पैदा करके दिखलाया करता है। हर मामले में केवल उसे ध्यान देने की देर है, फिर क्या है जो वह नहीं कर सकता ? इस ध्यान शक्ति के ऊपर अधिकार पाने पर आकाश मण्डल की छिपी हुईं बिजली जैसी शक्तियां उसके संकेत पर काम करने को तैयार रहती हैं। इस स्थूल माया के मण्डल में रहकर भी वह जब कभी मन को कार्य विशेष की ओर एकाग्र करता है तो कमाल कर दिखाता है - क्या इसमें कोई आश्चर्य है ? फिर मनुष्य की हस्तकलायें, उसके विचारों की ऊंची उड़ान तथा उसकी बुद्धि की खोज के तमाशे सभी तो इसके साक्षी हैं। उसमें हर बात को कर दिखाने की सम्भावित क्षमता है।

जब यह हाल आत्मा का है, जिसकी उपमा समुन्द्र की बूँद से दी गयी है, तो समझना चाहिए कि उस समुन्द्र की शक्ति और ज्ञान की भला क्या सीमा होगी? यह विचार करते ही बुद्धि चक्कर खाने लगती है अथवा आश्चर्यचकित हो जाती है। वह ज्ञान का, आनन्द का और असल सत्ता का भण्डार है। इस संसार में जो कुछ प्रकृति का कार्य-कौशल तथा सौंदर्य दृष्टिगोचर हो रहा है वह आकस्मिक मात्र नहीं है, बल्कि वह किसी दिव्यता और प्रकृति की पूर्ण सामर्थ्य एवं सम्पन्नता की झलक प्रस्तुत करता है और परमात्मा की सत्ता का प्रमाण है। यदि किसी प्रकार यह बूँद उसी समुन्द्र में प्रविष्ट हो जाये तो फिर इसके आनन्द , शक्ति और ज्ञान का क्या ठिकाना ?

हमने सुख के प्रकार तथा सुख के मंडलों और उनके साधन वर्णन कर दिए हैं। इन सब का असल उद्देश्य यह है कि मनुष्य उस सुख के भण्डार की ओर प्रवृत्त हो सके, वरना फिर इसके बीच की अवस्थाओं में भटकाव होने का भय है। सुख के भण्डार की ओर वापस चलने के साधन कठिन नहीं हैं। इन्हें स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध सब कर सकते हैं। इसके लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपने जीवन के काम - काज आदि छोड़ दे, बल्कि आवश्यकता यह है कि आसानी से जीवन निर्वाह करते हुए सुरत शब्द का अभ्यास करता रहे। जो मनुष्य प्रसन्न रहता है वह परमात्मा की पूजा व उससे प्रेम बहुत आसानी से कर सकता है।

मालिक को प्रसन्न करने की कोशिश करना चाहिए और सारी बातें उसी की इच्छा के अधीन समझना चाहिए / 'तेरी इच्छा पूर्ण हो ' - यह महामंत्र हर भक्त और प्रेमी की जिव्हा पर रहना चाहिए। जो इस पर चलने वाले हैं, वे मालिक के किसी काम में दोष नहीं देखते और सदा उसकी याद में प्रसन्न रहने की आदत सीखते हैं। संतों का साधन प्रेम मार्ग है। प्रेमी उस मालिक के बन्दों में अच्छाई देखने का इच्छुक रहता है और बुराई की ओर से अपनी आँखें बंद कर लेता है। विशाल हृदयता, विमल बुद्धि, इच्छा शक्ति और साहस आदि प्रभावों को हृदयंगम करने वाला किसी से घृणा नहीं करता और न दूसरों की शिक़ायत अपनी जिव्हा पर लाता है। उसको हर काम में ' मालिक की मौज़' दिखाई देती है। उसको शान्ति वाह्य ही नहीं बल्कि आंतरिक अनुभूति में होती है। वह वहिर्मुखी साधन नहीं बल्कि अंतर्मुखी साधन करता है। उसको हर जगह मालिक के प्रेम का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। उसे मालिक के प्रेम और दया के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता और वह उस मालिक की मौज़ को सदा दृष्टि में रखते हुए किसी भी दुख-सुख की परिस्थिति में मगन और संतुष्ट रहता है।

जो मनुष्य इस केन्द्र की ओर चित्त की वृत्ति को लगाता है वह सिवाय मालिक के और किसी वस्तु को नहीं जानता - न ही वह किसी नाशवान वस्तु के लिए प्रार्थना करता है और न अपने प्रेम, भक्ति के बदले का कोई विचार करता है। वह जो प्रार्थना करता है वह भी इसी प्रसन्नता के कारण से करता है, इस भावना से नहीं कि इससे उसका भला होगा। इससे वह उस परमात्मा के समीप जाता है और इस प्रकार वह नित्य -प्रति उसकी समीपता पाता जायेगा। उसको और क्या चाहिए ? कहा गया है कि परमात्मा को चाहने वाला ' सच्चा प्रेमी है ' और संसार को चाहने वाला ' कपटी ' है तथा परलोक चाहने वाला ' मज़दूर ' है क्योकि वह भक्ति का बदला या महनताना चाहता है।

परमात्मा के प्रेमी का सांसारिक सुख पहुँचाने वालों अथवा ऐसे साधू भेषधारियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भेषधारी की आशा होती है। प्रेमी के मनन का केन्द्र परमात्मा (मालिके कुल) होता है। यह इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। भेषधारी ने जो स्वांग बनाया है, वह केवल धन्धे या संसार में भ्रमण करने आदि सांसारिक उद्देश्यों के लिए है। प्रेमी भक्त अपने अन्तर में शब्द का अभ्यास करता हुआ परमात्मा के दर्शन का इच्छुक होता है। उसका काम दिखावे का नहीं होता।

धर्म दिखाने की वस्तु नहीं है। धर्म, साधन, मार्ग, पंथ - ये सब शब्द परमार्थ-पथ के पर्यायवाची है। सुरत का उतार प्रथम शब्द के द्वारा हुआ और यह सुरत जहाँ -जहाँ उतरी, वहाँ मण्डल बना कर नीचे को आ गयी। ऊपर प्रकाश है ओर नीचे अंधकार है। सुरत तो शब्द की डोर को पकड़ कर ऊपर की ओर चलती है। इसकी गति उस मछली के समान है जो पानी की उलटी धार को पकड़ कर आगे बढ़ती

जाती है। सुरत ऊपर की ओर शब्द की सहायता से एक स्थान (चक्र) पर पहुँच कर दूसरे स्थान पर जाने की इच्छुक होती है।

और फिर ऐसा ही अभ्यास करते रहने के बाद सुरत निज भण्डार में प्रविष्ट हो जाती है, जो अलख है, अगम है, जिसके प्रकाश का अनुमान हज़ारों, लाखों, करोड़ों और अनगिनत सूर्य-चंद्र के प्रकाश से भी नहीं लगाया जा सकता। न वहाँ काल है, न धर्म है, न माया है, न स्थूलता है - आकाश के शब्द की संज्ञा भी वहाँ के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती। वाणीऔर मन की वहाँ कोई जगह नहीं है। किसी अनुमान आदि की भी वहाँ पहुँच नहीं है।न वहां दिन है, न रात है, न इसका कोई नाम है और न कोई निशान है।

जो आत्मा वहाँ तक पहुँच गयी वह फिर सदा के लिए मुक्त हो जाती है, फिर इसको कभी माया के आवरणों का, जन्म-मरण के चक्र का, भय नहीं रहता है। जो वहाँ पहुँचा वह काल के चक्र से छूट गया। वह अमर हो जाता है। जो आत्मा वहाँ स्थिति प्राप्त कर लेती है वह अनन्त आनन्द में मस्त होकर ख़ुशी के गीत गाती हैं और इस अनुपम दशा को संत कबीर जैसी पूर्ण आत्मायें ही बता पाती हैं :

हम वासी उसके जहाँ, सत्तपुरुष की आन !

सुख-दुःख कोई व्यापे नहीं, सब दिन एक समान!!

कहना था सो कह चुका, अब कुछ कहा न जाय !

एक रहा दूजा मिटा, गया कबीर समाय !!

महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (लालाजी साहब) के जीवन की कुछ घटनायें

संत मत की यह विशेषता सदा से चली आई है कि शिष्य का जब आन्तरिक सम्बन्ध (निस्बत) स्थापित हो जाता है तब अप्रत्यक्ष रूप से गुरु छाया की भाँति शिष्य की सदैव देख-भाल करता है। इसी सम्बन्ध के विषय में पूज्य लालाजी के जीवन के कुछ दृष्टांत दिए जाते हैं।

(1) फ़रुखाबाद में एक बार श्री लालाजी के सहपाठियों ने गंगा जी के किनारे स्वामी ब्रह्मानंद जी केआश्रम के नज़दीक पिकनिक का प्रोग्राम रखा। वहाँ पर यह लोग ज़बरदस्ती महात्मा जी को भी ले गये। खाना खाने के बाद गाना-बजाना होता रहा। इसके बाद भाँग घुटी और सबने पी। आपने पीने से मना किया और बड़ी नम्रता से कहा कि उन्हें मजबूर न करें क्योंकि किसी प्रकार का नशा न करने की प्रतिज्ञा उन्होंने अपने गुरु से कर ली है। लेकिन दोस्तों ने कुछ नहीं सुना और ज़बरदस्ती आपको रेती पर लेटा दिया। दो चार दोस्तों ने हाथ पैर पकड़ लिये और एक दोस्त (पंडित माता प्रसाद) आपकी छाती पर चढ़ बैठा और ज़बरदस्ती भाँग पिलाने लगा। आपने बहुत मना किया लेकिन आख़िर बेबस होकर चुप हो गये और अपने गुरुदेव का ध्यान करने लगे।

एकाएक आपका चेहरा तमतमा उठा, एक प्रकाश चेहरे पर छा गया, चेहरा बदल गया और उस पर मूंछे और दाढ़ी मालूम होने लगी। यह देखकर पंडित माता प्रसाद घबरा उठे, छाती पर से उठ बैठे और चुपचाप आश्चर्यचकित होकर एक तरफ़ खड़े हो गये और लोगों को मना किया कि आपको मज़बूर न करें। अतएव आपको फिर मज़बूर नहीं किया गया और आपको भाँग नहीं पीनी पडी। थोड़ी देर बाद वहाँ स्वामी ब्रह्मानन्द जी आगये। जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्होंने सबको फटकारा और कहा कि जिस लड़के को तुम आज झूंठा नशा पिलाते हो, समय आने पर यह संसार के प्यासे जीवों को असली नशा पिलावेगा।

शाम को सब लोग गंगा जी से घर वापिस आये। रास्ते में क्या देखते हैं कि लालाजी के गुरुदेव यानी हुज़ूर महाराज, उधर से पधार रहे हैं। महात्मा जी ने बहुत ही नम्रता से उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ टहलने चले गए और रास्ते में तमाम हाल निवेदन किया। हुज़ूर महाराज ने कहा जो लोग परमात्मा पर भरोसे करते हैं, उनको मदद मिलती है। पंडित माता प्रसाद ने हुज़ूर महाराज को देखकर तुरन्त पहचान लिया कि यह तो वही महात्मा हैं जिनकी सूरत में जनाब लालाजी साहब का चेहरा बदल गया था।

(2) एक बार श्रीमान लालाजी साहब बहुत बीमार हो गये, चलने फिरने से लाचार थे और खाट से लग गये। बीमारी के कारण आप इतने परेशान नहीं थे जितने परेशान इस वजह से थे कि अब आप हजूर साहब की सेवा में नहीं जा सकते थे। एक दिन आप डोली में बैठकर हुज़ूर साहब की सेवा में पहुँचे और आँखों में आँसू भर लाये। हजूर साहब ने बड़े स्नेह से आपकी ओर देखा और बड़ी सहानुभूति से कहा - " बेटे पुत्तूलाल ! घबराओ नही। (हुज़ूर महाराज लालाजी को इसी नाम से पुकारते थे)

' देह धरे का दंड है, सब काहू को होय !

ज्ञानी भोगे ज्ञान से, मूरख भोगे रोय !! "

श्रीमान लालाजी कहा करते थे कि उस दिन से उनकी तबियत ठीक होने लगी। कभी-कभी हुज़ूर महाराज भी स्वयं दर्शन देने आ जाते थे। थोड़े ही दिनों में वे बिलकुल ठीक हो गये।

(3) हज़ूर महाराज लालाजी साहब से उम्र भर में एक बार भी नाराज़ नहीं होने पाये। जो हज़ूर महाराज दिल में सोचते थे वही महात्मा जी के दिल में आ जाता था। यह प्रेम की पराकाष्ठा है और प्रकट करती है कि दोनों के दिल कितने मिले हुए थे। एक रोज़ लालाजी साहब यह चाहते थे कि जो कोई उनके सामने आये उसको बेंत से मारें। दिन भर यही ख़्याल आता रहा और आप परेशान रहे। शाम को आपने अपनी हालत हज़ूर महाराज से निवेदन की। उन्होंने कहा - "ठीक है, आज हम नालायक लड़कों और नाराज़ होते रहे और उनको सज़ा देते रहे, और क्योंकि तुम प्रत्येक पल हमारा ध्यान करते रहते हो इसलिए तुम पर भी असर पड़ा।"

(4) एक दिन हज़ूर महाराज अकेले ही बैठे हौज़ के किनारे पानी से खेल रहे थे और पानी को इधर-उधर उछाल रहे थे। श्रीमान लालाजी दर्शनों के लिए उपस्थित हुए। प्रणाम किया और दो मिनट बाद ही जाने की आज्ञा चाही। हज़ूर महाराज बहुत ख़ुश हुए और बड़े प्यार से बोले - " बेटे पुत्तूलाल। क्या बात है कि जो हम सोचते हैं, वही तुम करते हो ? इस वक़्त हम यही चाहते थे कि तुम चले जाओ, और तुमने फ़ौरन जाने की आज्ञा मांग ली। हमको यह तमन्ना हो रही थी कि एक बार तो तुमसे नाराज़ होते।"

(5) श्रीमान लालाजी साहब कहा करते थे कि जो हज़ूर महाराज के दिल में आता है वह ज्यों का त्यों हमारे दिल में उतर आता है। उन्होंने बताया कि यह एक सिद्धि है। अगर कोई शिष्य आपने हृदय को अपने गुरु के सामने लगातार बहत्तर घंटे रखे और एक सेकेण्ड के लिए भी ग़ाफ़िल न

रहे तो यह सिद्धि आ जाती है। हमने यह सिद्धि अपनी शादी में हासिल की जब हमें अपने पिता की आज्ञा के अनुसार महफ़िल में लगातार बैठना पड़ा। लेकिन यह अमल उसी समय हो सकता है जब शिष्य अपने गुरु में पूरी तरह से लय होने वाला हो और उसकी विचार शक्ति इतनी मज़बूत हो कि अपने ख़्याल से इतने लम्बे समय में एक सेकेण्ड के लिए भी इधर-उधर न हो।

सच तो यह है कि जब ऐसी हालत हो जाती है तभी पूरी आध्यात्मिक विद्या जो गुरु के मन में होती है शिष्य में आ जाती है। ऐसी हालत में दुई (द्वैत या दो पना) बिलकुल मिट जाती है। प्रेम का तार जुड़ जाता है। दूरी बिलकुल नहीं रह जाती। जो एक सोचता है, दूसरा उसको महसूस करता है। गुरु समुद्र पार बैठा हुआ शिक्षा दे रहा है और शिष्य समुद्र के इस पार बैठा हुआ उस शिक्षा को ग्रहण कर रहा है। इसका साक्षात जग विख्यात उदाहरण विश्व धर्म सम्मेलन, शिकागो, में स्वामी विवेकानन्द द्वारा उनके गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस जी में लय होकर वह चिरस्मरणीय भाषण देने वाली घटना है। ऐसी हालत में गुरु के निर्वाण हो जाने पर शिष्य बराबर अपने गुरु से लाभान्वित (फ़ैज़याब) होता रहता है। इसी को आन्तरिक सम्बन्ध (निस्बत) कहते है।

प्रेम गली अति सांकरी, या में द्वै न समाहि !

जब लग 'मैं ' था गुरु नहिं, अब गुरु है 'मैं'नहिं !!

(6) हमारे पूज्य गुरुदेव डॉ॰ श्रीकृष्ण लालजी महाराज ने स्वयं बताया कि एक बार आप देहली में चाँदनी चौक में किसी काम से पधारे और घंटाघर से फ़तेहपुरी की तरफ़ रवाना हुए, फिर वहाँ से सब्ज़ी मंडी की तरफ़ मूड गये, बर्फ़खाने तक बराबर चलते गये। सेवक पीछे-पीछे साथ था। सेवक का ख़्याल था कि आप देहली इससे पहले भी पधारे होंगे। यहाँ के रास्ते को जानते होंगे और किसी ख़ास काम से इस तरफ़ को जा रहे होंगे। बर्फ़खाने पहुँचकर, जो घंटाघर के करीब डेढ़ मील की दूरी पर है, महात्मा जी ठहर गये और सेवक से पूछा - "क्या तुम जानते हो कि मैं यहाँ क्यों आया ?" मैंने जबाब दिया कि -"मुझे नहीं मालूम "? आपने कहा - "उन बुजुर्ग को देखो जो सामने जा रहे हैं, उनकी शक्ल व सूरत हजूर महाराज से बहुत मिलती है। बस उनको देखता हुआ मैं यहाँ तक चला आया।" इतना कह कर नेत्रों में जल भर लाये। आपको हजूर महाराज से बहुत प्रेम था। उनके विषय में बहुत कम बातचीत करते थे और जब कभी बातचीत करते थे, सारा शरीर प्रेम के आवेश में काँपने लगता था और बाद में आँसू आ जाते थे।

इसी तरह सेवक को आचार्य पदवी (इज़ाज़त) देते समय आप हज़ूर महाराज का ख़त पढ़ने का बाद उनकी याद करके

फूट-फूट कर रोते रहे। जब कभी भी आप महाराज जी का ज़िक्र करते थे, हमेशा प्रेम का आवेश हो जाता था। यद्यपि आप बहुत ज़ब्त करने वाले थे लेकिन फिर भी प्रेमावेश के वेग को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और आँखों से आँसू छलक आते थे। कभी-कभी तो ज़ोर-ज़ोर से रोने लगते थे और उनकी हिचकी बन्ध जाती थी।

(7) महात्मा जी को जो तनख़्वाह मिलती थी वह आप गुरुदेव की सेवा में भेंट कर देते थे और गुरुदेव किसी के हाथ घर भिजवा देते थे। एक बार हज़ूर महाराज के यहाँ कई रोज़ से उपवास चल रहा था क्योंकि घर में भोजन सामग्री नहीं थी और यही हालत महात्मा जी के यहाँ थी। लालाजी के यहाँ किसी जगह से एक मनीऑर्डर के पन्द्रह रुपये आये। उनमें से दस रुपये महात्मा जी के यहाँ भिजवा दिए और पाँच रुपये अपनी धर्मपत्नी (माताजी) के पास भिजवा दिए ताकि घर में भोजन आदि का सामान मंगा लें।

शाम को जब आप घर आये और खाने का इन्तज़ाम न देखा तो हमारी माताजी से पूछा कि अभी तक खाना क्यों नहीं बनवाया। माताजी ने उत्तर दिया कि जो रुपया आपने भेजा था वह हमने दूसरे घर (हज़ूर महाराज के घर) भिजवा दिया, क्योंकि वहाँ ज़रूरत थी। आप यह सुनकर हंस पड़े, बहुत ख़ुश हुए और कहा - "अच्छा किया"। और उस रोज़ सबका उपवास ही रहा।

आचार्य-दिगन्त परम संत महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज

प्राणी मात्र के उद्धार के लिए सदा से सन्त आते रहे हैं और भविष्य में भी आते रहेंगे। सन्त दो प्रकार के होते हैं । एक तो अवतारी सन्त जो ईश्वर के भेजे हुए आते हैं और दूसरे वे सन्त जो अपने किसी साधारण से संस्कार को भोगने के लिए जन्म लेते हैं और उसे भोगते हुए किसी वक्त के पूरे सन्त-सद्गुरु की शरण में रहकर ईश्वर की प्राप्ति करते है। दोनों के कार्यों में समानता इतनी ही होती है कि वे भूले-भटके जीवों को परमार्थ की राह पर लगाते हैं, उन्हें ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बताते हैं और इस काम में उनकी जी-जान से सहायता करते है। उनकी हार्दिक इच्छा होती है कि जैसे हम हैं वैसे ही सब हो जायें, जैसी ईश्वर-प्राप्ति हमको हुई है वैसी ही सबको हो जाये। उन्हीं की तरह सबको पूर्ण आनन्द, अनन्त जीवन और पूर्ण शान्ति की प्राप्ति हो। यही उनका मिशन होता है।

अन्तर यह होता है कि जो सन्त ऊपर से आते हैं यानी जो सन्त अवतारी होते हैं, वे देश, काल और परिस्थिति के अनुसार सिलसिले के पहले से चलते आये तरीक़ों में सुधार करते हैं और पुरानी पद्धति को मनुष्यों की सुविधानुसार बदल कर एक नवीन पद्धति को जन्म देते हैं, जैसे कबीर साहब, गुरु नानक देव, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि। वे अपने साथ कोई न कोई एक ऐसी महान आत्मा को लाते हैं जो उनके शरीर छोड़ने के बाद उनके मिशन को आगे बढ़ाये। ऐसे अवतारी सन्त कई सौ वर्ष बाद आते है। मुसलमान सूफ़ियों में इन्हें युजद्दिद कहते है। यह अपना मिशन दूर-दूर तक फ़ैलाते रहते है। दूसरे प्रकार के सन्तों को उपासना पद्धति में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता, वे सिलसिले को क़ायम रखते हैं और मिशन के काम को आगे बढ़ाते है।

आचार्य दिगन्त परम सन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज ऐसे ही अवतारी महात्मा थे जिनका संक्षिप्त विवरण ऊपर आ चुका है। महात्मा जी के प्रकट होने से पहले चक्र-बन्धन विद्या का सिलसिला हिन्दुओं में प्रायः लोप सा हो चुका था और जो गिने -चुने लोग इसके जानकार मौज़ूद भी थे वे या तो इसे फैलाना नहीं चाहते थे या गिने- चुने जिज्ञासुओं को ही उसकी शिक्षा देते थे। इससे यह शिक्षा छिपी रही। नक़्शबन्दी ख़ानदान के मुसलमान सूफ़ियों में यह विद्या सीना-ब-सीना चली आती थी परन्तु जातीयता की भावना के कारण और समाज के डर से न तो हिन्दू ही उनके शिष्य बनना चाहते थे और न मुसलमान सूफ़ी ही इस विद्या को हिन्दुओं को देना चाहते थे। महात्मा जी ने समाज के

लांछनों की परवाह न करते हुए और जातीयता के संकीर्ण विचार से ऊँचे उठकर इस विद्या को एक परम उदार, वक्त के पूरे सतगुरु परम सन्त मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहब से प्राप्त किया। पंथ के उस समय के कठोर नियमों को सरल बनाया, इसको सीखने की नवीन और सरल विधि का आविष्कार किया और हिन्दू धर्म की सुविधा के अनुसार, देश व काल का विचार रखते हुए, पुरानी पद्धति में आवश्यक परिवर्तन करके इस विद्या को पुनः हिन्दुओं में प्रचलित किया। अब गृहस्थ, विरक्त, वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री, पुरुष - सब ही इसे सुगमता से सीख कर अपना जीवन सफल कर सकते है। हिन्दू समाज के लिए महात्मा जी की यह अमूल्य देन है जो वर्तमान और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए अमर वरदान है।

परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी पूर्ण-योगी, पूर्ण-गुरु और पूर्ण ब्रह्म-वेत्ता थे। योग की, विशेष कर चक्र विद्या की, उच्च अवस्थाओं को उन्होंने प्राप्त किया था। इस मार्ग की प्रत्येक बारीकी से वे पूर्णतया परिचित थे और सीखने वाले को उसकी योग्यता के अनुसार वे ऐसे सरल मार्ग पर लगा देते थे जिससे वह बिना कठिनाई के तीव्रता से ऊँची दशाओं को आसानी से प्राप्त कर सके

महात्मा रामचन्द्र जी का जन्म शुभ स्थान फ़रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में बसंत पंचमी के दिन (4 फरवरी, 1873) हुआ था। आपके पिता का शुभ नाम चौधरी हरबख़्श राय था जो एक बहुत बड़े ज़मींदार थे और फ़रुखाबाद में सुपरिन्टेन्डेन्ट चुँगी तैनात थे। महात्मा जी के जन्म के विषय में एक अद्भुत घटना यहाँ दी जाती है :-

आपकी पूज्य माता जी अत्यन्त सुशील, भली और धर्मात्मा थीं। उनका अधिकतर समय पूजा-पाठ में व्यतीत होता था। अपने दरवाज़े से किसी अभ्यागत को खाली नहीं जाने देती थीं। बहुधा फ़क़ीरों और सन्तों के सत्संग में जाया करती थीं और कभी-कभी कोई सन्त आकर उनके यहाँ ठहरा करते थे। एक बार कहीं से एक सन्त फ़रुखाबाद आये। माता जी उनके सत्संग में गयीं। सत्संग में सन्त जी कबीर साहब की जीवनी सुना रहे थे। कबीर साहब की साखियाँ सुनाते जाते और व्याख्या करते जाते थे। माताजी को उनके सत्संग में बहुत आनन्द आया। प्रेम के आँसू बहने लगे। उन्होंने ईश्वर के ध्यान में आँखें बन्द कर लीं और सत्संग समाप्त होने पर जब आँखें खोलीं तो अद्भुत आनन्द का समुन्द्र अपने हृदय में लहलहाता अनुभव किया। जब चलने लगीं तो सन्त महाराज ने सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया - " बेटी जाओ, परमात्मा करें फूलो-फलो और ईश्वर तुम्हें अपने प्रेम से मालामाल करें।" आशीर्वाद का फल यह हुआ कि ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये ईश्वर का प्रेम दिन दिन बढ़ता गया और समाधि अवस्था आने लगी। दुनियाँ से उदासीन रहने लगीं और पहले से और अधिक समय कथा-कीर्तन

में व्यतीत करने लगीं। उससे पूर्व उनके कई सन्तानें हुईं परन्तु कोई जीवित न रही। एक बार एक मुसलमान अवधूत माता जी के द्वार पर आये और भोजन माँगा। माता जी ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मिठाई, पूरी, आदि भेंट कीं परन्तु उन अवधूत फ़क़ीर ने स्वीकार नहीं कीं। उन्होंने मछली खाने की इच्छा प्रकट की। माता जी बड़ी विवश हुईं क्योंकि मांस आदि का प्रयोग आप नहीं करती थीं। सामने के घर से दो मछलियाँ मँगवा कर माता जी ने उन अवधूत महात्मा को भेंट कर दीं और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक खा लीं। जब वे चलने लगे तब ' अल्ला-हो-अकबर ' ज़ोर से कह कर दुआ के लिए हाथ ऊपर उठाये और " एक, दो " कहते हुए कहीं अन्यत्र चले गये। भगवान की कृपा और फ़क़ीर की दुआ का यह असर हुआ कि एक वर्ष बाद 4 फरवरी 1873 वसंत पंचमी के दिन महात्मा रामचन्द्र जी का जन्म हुआ/ इसके दो वर्ष बाद उनके छोटे भाई का जन्म 17 अक्टूबर, 1875 को हुआ जो महात्मा रघुबर दयाल साहब उर्फ़ चच्चा जी महाराज के नाम से विख्यात हुए।

महात्मा रामचन्द्र जी महाराज का जीवन चरित्र उनके परम प्रिय और लाड़ले शिष्य परमसन्त डॉ। श्रीकृष्ण लाल जी महाराज, रामाश्रम सत्संग, सिकन्दराबाद (उ। प्र।) द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। महात्मा जी ने 14 अगस्त, 1931 को महानिर्वाण प्राप्त किया। आपकी समाधि फतेहगढ़ में कमालगंज जाने वाली सड़क पर बनी हुई है।

महात्मा जी का चलाया हुआ मिशन भारत वर्ष के (विशेषकर उत्तरी भारत के) सभी प्रमुख नगरों में फैला हुआ है। आपका विचार था कि दिखावा और आडम्बर बिलकुल नहीं होना चाहिए। केवल सत्संगियों की संख्या बढ़ाना ध्येय नहीं होना चाहिए। चाहे थोड़े ही आदमी हों परन्तु वे हों ऐसे ठोस हों जो इस सिलसिले के सिद्धांतों पर चलें और अपने चरित्र का गठन करते हुए सत्संग में रहकर आन्तरिक अभ्यास करके आध्यात्मिक उन्नति करें। उनके इस आदेश का निरन्तर पालन हो रहा है। यही कारण है कि न इस मिशन का कोई बाहरी दिखावा है, न कोई तड़क भड़क, परन्तु जो छोटी सी संख्या इसके सत्संगियों की दिखाई देती है वह इतनी शानदार और ठोस है जिसका मुक़ाबला दूसरी संस्थाओं के मेम्बरों से वे ही कर सकते हैं जिनके पास आध्यात्मिक दृष्टि है।

चक्र बेधी वंश में यह एक बहुत बड़ी ख़ूबी है कि वर्तमान आचार्य और सर्वप्रथम अवतरित आचार्य इस तरह लय अवस्था में रहते हैं जैसे जंजीर की कड़ियाँ। यदि नीचे की कड़ी हिलाओ तो ऊपर तक की सब कड़ियाँ हिल जाती हैं। इसी प्रकार वर्तमान गुरु से प्रेम करने से, उनके सर्वथा आश्रित हो जाने से, और उनमें अपने आप को लय कर देने से, जिज्ञासु स्वयं ईश्वर में लय हो जाता है। ध्यानावस्था में जिज्ञासु की पग-पग पर रक्षा और देखभाल होती रहती है। इस वंश के विगत महापुरुष

समय-समय पर सहायता करते रहते हैं और कभी-कभी स्वप्न में अथवा सत्संग में ध्यान करते समय उनके दर्शन नहीं होते हैं।

8 फरवरी 1973 (बसंत पंचमी) महात्मा जी की जन्म-शताब्दी है। इस पुण्य अवसर पर उनके मिशन से सम्बन्धित सब व्यक्तियों को उनके प्रति अपना प्रेम भरा हृदय अर्पित करना चाहिए और उनसे दुआ करनी चाहिए कि उनके बताये हुए सन्मार्ग पर चलकर हम सब, और संसार के सारे प्राणी, उन जैसे हो जावें।

प्रायः संसारी मनुष्य ऐसे सन्तों को अधिक महत्व देते हैं जो सिद्धियों और चमत्कारों के द्वारा अपना प्रभाव दूसरों पर डालते हैं। सिद्धियाँ और चमत्कार जिनको साधारण मनुष्य आश्चर्य की दृष्टि से देखते हैं कोई ऐसी बात नहीं है जो श्रष्टि के नियमों के विरुद्ध हो। मनुष्य शरीर कई शरीरों की मिलौनी है और जब अभ्यास के द्वारा इन शरीरों की शक्तियों के केन्द्रों को जाग्रत करके मनुष्य अपने वश में कर लेता है तो ऐसे काम कर सकता है जो साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। इन्हीं को सिद्धि या चमत्कार कहते हैं। ऐसे काम आत्म अनुभव में बाधक होते हैं। इसलिए संत जन बहुत कम सिद्धियों का प्रयोग करते हैं। जो मनुष्य स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीनों की शक्तियों को जगा कर आत्मा के स्थान पर पहुँच जाता है और उसकी दबी हुई शक्तियों को उभार लेता है उसका जीवन प्रत्यक्ष चमत्कार हो जाता है। वह गुणों से परे हो जाता है, सारी शक्तियाँ उसके आधीन हो जाती हैं, वह विशेष कोई इच्छा लेकर कोई काम नहीं करता और उसकी सब इच्छायें परमात्मा की इच्छा के अधीन होती हैं। जो उसके विचार में आता है वह स्वयं हो जाता है, ऐसे महापुरुष किसी सिद्धि शक्ति का प्रयोग नहीं करते बल्कि जो काम उनके द्वारा होता है वह चमत्कार और करामात ही है क्योंकि साधारण आदमी उनको नहीं कर सकते। महात्मा जी का जीवन ऐसा ही चमत्कारिक जीवन था।

आप कहा करते थे कि फ़क़ीर के लिए इससे अधिक चमत्कार क्या हो सकता है कि वह एक पशु को मनुष्य बना देता है। जिस आदमी की रहनी-सहनी ठीक न हो वह पशु है और रहनी-सहनी ठीक हो जाने पर ही मनुष्य मनुष्य कहलाने का हक़ रखता है। आपका व्यक्तित्व ही स्वयं एक चमत्कार था। जो भी आपकी सेवा में आया, चाहे वह मनुष्य था या पशु पुरुष था, या स्त्री, वृद्ध या बालक, बदमाश या नेक, आपकी संगति के प्रभाव से न बच सका। जो कोई भी आपके चरणों में बैठता वह यही कहता था कि एक प्रकार कि ऐसी शांति का अनुभव होता है कि तबियत उठने को नहीं चाहती। सफ़र की सब थकावट आपकी सेवा में पहुँच कर जाती रहती थी। हर एक को गर्व था कि आप सबसे अधिक उसी से

प्रेम करते हैं और बड़े दयालु हैं। जो एक बार भी संयोगवश आपके सत्संग में आ गया वह सदा के लिए आपके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया। आप बहुधा कहा करते थे -

'कदग़न है यही ग़ैर कोई आने न पाये,

गर बेख़बर आ जावे तो जाने न पाए !

अर्थ - या तो कोई ग़ैर आदमी अपनी सोहबत में आने न पाये, और अगर भूल से आ जाये तो फिर जाने न पाये।

अगर यह कहावत ठीक उतरती थी तो आपके सत्संग मैं। जो व्यक्ति अभ्यास भी नहीं करते थे, शौक़िया जा बैठते थे, वे भी थोड़े दिनों के सत्संग के प्रभाव से अपनी रहनी -सहनी में उन्नति करते थे और उन्हें आत्मिक लाभ जो वर्षों के अभ्यास से प्राप्त नहीं हो सकता था वह आपके थोड़े से सत्संग से अनुभव होने लगता था। आप किसी से किसी बुरी आदत को छोड़ने के लिए नहीं कहा करते थे बल्कि आपके सत्संग के प्रभाव से बुरी आदत स्वयं छूट जाती थी।

आप कहा करते थे कि आग के पास बैठने से गर्मी महसूस होती है, बर्फ के पास बैठने से सर्दी महसूस होती है, चरित्र की पूर्णता यह है कि ऐसे व्यक्ति के पास बैठने से चरित्र का गठन स्वयं हो जाता है।

महात्मा जी के जीवन की दो-चार घटनायें यहाँ दी जाती हैं -

(।)

एक बार महात्मा जी एक मुसलमान सूफ़ी से मिलने गये। उनके एक प्रिय शिष्य भी उनके साथ थे। वापसी पर कहने लगे कि सूफ़ी साहब का कथन है कि जब तक मुस्लमानी धर्मशास्त्र की पाबन्दी न की जावेगी (जैसे नुमाज पढ़ना, रोज़ा रखना, आदि) उस समय तक ईमान क़ायम नहीं रह सकता और न ही बुजुर्गान (महापुरुषों) से फ़ैज़याबी (लाभ) हो सकता है। थोड़ी देर बाद फिर आपने कहा कि - धर्मशास्त्र की पाबन्दी ज़रूरी है लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि मुसलमानी शरह ही की पाबन्दी की जाय। और यही तालीम गुरुदेव ने हमको दी थी और न ही इस उम्र में हमसे ऐसा हो सकता है। हम तो सिर्फ़ अपने दोस्त (प्रिय गुरुदेव) को देखते रहें और यही हमारी ज़िन्दगी का तोशा है। जब आक़बत (परलोक) में हमसे पूछा जायेगा कि तुम क्या करते रहे तो हम तो सिर्फ़ अपने दोस्त की तस्बीर पेश कर देंगे और बस।

(2)

एक बार आग्रह करने पर महात्मा जी सिकन्दराबाद में एक रईस के यहाँ ठहरे जिन्होंने रहने के आराम के लिए विशेष प्रबन्ध कर दिया। यह पाबन्दी कर दी गयी कि अमुक समय के अलावा कोई उनसे नहीं मिलेगा। महात्मा जी दो तीन दिन तो कुछ नहीं बोले फिर कहने लगे कि हम ऐसी जगह नहीं रह सकते जहाँ लोगों के ऊपर हमसे मिलने की पाबन्दी हो। हमारे पास हर प्रकार का मनुष्य हर समय आ सकता है। यह कह कर उन्होंने उस जगह को छोड़ दिया।

(3)

एक बार उनके एक प्रिय शिष्य के एक निकट सम्बन्धी एक फौज़दारी मुक़दमे में फँस गये। शिष्य ने महात्मा जी से प्रार्थना की कि उनकी सहायता करें। उन्होंने कहा - " जो जैसा करता है, वैसा भरता है। तुम्हारे सम्बन्धी ने ऐसा काम किया है जिसकी सज़ा जेलखाना है। मैं इसमें कुछ नहीं कर सकूँगा।" शिष्य ने फिर निवेदन किया कि घर तबाह हो जायेगा, अकेले कमाने वाले हैं, इतनी बड़ी गृहस्थी है, कैसे गुज़ारा होगा ? उन्होंने कहा - " मैं नहीं चाहता कि तुम इस मामले पड़ो, उस परमात्मा पर छोड़ दो, जैसा होगा हो जायेगा।" शिष्य ने हट पकड़ ली और निवेदन किया कि आपने कई दफ़े फ़रमाया है कि जो कुछ तुम माँगोगे, मैं दूँगा, लेकिन आज आप मेरी माँग को ठुकरा रहे हैं। वे लेटे से उठकर बैठ गये। मौन धारण कर लिया। कहने लगे - " जाओ, जेलख़ाना नहीं होगा, लेकिन दो महीने बाद नौकरी से अलहदा हो जायेंगे। यह तुमने अच्छा नहीं किया कि मुझ पर इतना ज़ोर डाला। मैं तक़दीर को नहीं पलट सकता, सिर्फ़ उसको बदल सकता हूँ। अगर माँगना था तो कुछ और चीज़ माँगी होती। जाओ अब तुम मेरे सामने से दूर हो जाओ।" उस शिष्य को आजीवन इस बात का दुख रहा कि उन्होंने महात्मा जी की मर्ज़ी के खिलाफ़ क्यों ऐसी चीज़ माँगी।

(4)

यह 1916 की बात है कि महात्मा जी दौरे पर डिप्टी साहब के साथ क़ायमगंज गये। एक शिष्य को उनसे मिलने की तीव्र इच्छा हुई। वह फ़तेहगढ से दर्शन के लिए चल दिए। कुछ रास्ता रेल से कुछ पैदल तै किया। पहुँचते पहुँचते शाम हो गयी। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि आपका डेरा एक गाँव में, जो वहाँ से चार मील की दूरी पर था, पड़ा हुआ है। वहाँ पहुँचते पहुँचते रात हो गयी। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि आज शाम ही आप वापिस क़ायमगंज चले गये। शिष्य भी रात को वापिस क़ायमगंज आ गये। रात ज़्यादा हो चुकी थी। कुछ पता न था आप कहाँ विराजमान हैं। शिष्य उस जगह अजनबी थे, बड़ी

परेशानी थी। शिष्य शहर की तरफ़ चल पड़े। वहाँ पर एक मकान में लैम्प जल रहा था और एक सज्जन बैठे थे। पता पूछने के इरादे से शिष्य वहाँ पहुँचे। क्या देखते हैं कि महात्मा जी स्वयं इतनी रात तक बैठे हुए इन्तज़ार कर रहे है। आपने शिष्य पर बड़ी कृपा की। कुछ भोजन जो आपके पास था खाने को दिया और बड़े प्रेम से अपने पास बैठा लिया। शिष्य ने अनुभव किया कि थकावट का नाम नहीं यद्यपि वह कई मील चलकर आये थे। तबियत बहुत खुश थी और मन में आनन्द भरा हुआ था ।

(५)

एक दफा आप सड़क पर जल्दी जल्दी टहल रहे थे। उनके प्रिय शिष्य के पिताजी उधर होकर निकले और पूछा कि क्या कोई विशेष बात है ? आपने कहा - "मेरे आफ़िस सुपरिन्टेन्डेन्ट रिश्वत लेने के आदी हैं और मुझसे बिना बात द्वेष करते हैं, यहाँ तक कि गाली भी दे बैंठते है। मैंने हमेशा सब्र से बर्दाश्त किया और कभी बुरा नहीं महसूस होने दिया। परन्तु आज न जाने क्यों मुझे उन पर गुस्सा आ रहा है और रोके नहीं रुकता।" मैं जल्दी-जल्दी दौड़ रहा हूँ और गुस्से को जब्त करना चाहता हूँ। ऐसा न हो कि उन पर इसका कोई बुरा असर हो। दो-तीन घण्टे बाद मालूम हुआ कि सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब का जवान लड़का अचानक हैज़े से बीमार होकर स्वर्गवासी हो गया ।

(6)

एक बार महात्मा जी अपने एक सम्बन्धी के साथ रेल द्वारा यात्रा कर रहे थे। आप उनका बिस्तर बिछाकर लेट गये। लिहाफ़ ओढ़ते ही बेहूदा ख़्याल उठने लगे। नींद आने पर वैसे ही स्वप्न दिखने लगे। जब लिहाफ़ हटा दिया, बेहूदा ख़्याल जाते रहे। उन सज्जन से बात चीत करने पर मालूम हुआ कि उनके विचार वैसे ही थे जैसे उनके कपडे ओढ़ने पर आ रहे थे। स्वच्छ सफ़ेद कपड़े पर थोड़े से भी मैल का दाग़ जल्दी लगता है। सन्तों का मन निर्मल होता है, इसलिए ऐसा हुआ।

(7)

एक सज्जन के यहाँ महात्मा जी ने भोजन किया। वह सज्जन शराब बेचकर बेईमानी से रुपया कमाते थे और उनकी कमाई शुद्ध नहीं थी। भोजन के कुछ देर बाद उनकी तबियत शराब पीने को चाही और उस विचार ने यहाँ तक मज़बूर किया कि शराब की बोतल लाकर रख ली। इतने में कुछ समय व्यतीत हो गया। वे विचार कमज़ोर पड़ गये, जाते रहे, और शराब पीने की नौबत न आयी।

महात्मा जी का कहना था कि संत मत के अभ्यास में जितना साधक उन्नति करता है उतना ही बाहरी चीज़ों का असर उस पर अधिक होता जाता है। इसीलिए सत्संगियों को यह आवश्यक है कि आपने आपको बाहिरी प्रभावों से बचायें।

महात्मा जी की शिक्षा

संतमत प्रेम का मार्ग है। वर्तमान आचार्य से प्रेम करने से शिष्य को ईश्वर प्रेम की प्राप्ति होती है जिससे वह प्रेम के असली भण्डार और श्रोत परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है। महात्मा जी का कथन था कि यदि शिष्य गुरु से प्रेम करता है, उनका सत्संग करता है और उनके आदेशों का पालन करता है तो इसी के द्वारा उसकी तकमील (आध्यात्मिक पूर्णता) हो जायेगी। सत्संगियों के लिए महात्मा जी की शिक्षा वास्तव में प्रेम की शिक्षा थी। प्रत्येक से स्नेह करना और प्रेम की डोर में बाँधे रखना, यह उनका तरीक़ा था। विशेष व्यक्तियों के लिए महात्मा जी ने कोई शिक्षा नहीं दी। उनके लिए केवल इतना आदेश था कि वे सत्संग में आते रहें और उनका उद्धार हो गया। परन्तु यह आदेश उँगलियों पर गिने चुने उत्तम अधिकारियों के लिए ही था। शेष सबके लिए 'जैसा पात्र वैसी शिक्षा,' किसी को सुरत-शब्द की शिक्षा देते थे तो किसी को ज़िक्रेख़फ़ी (दिल के जाप) की शिक्षा देते थे और किसी को कोई मन्त्र तो किसी को कोई कर्म बतला देते थे। परन्तु अधिकतर गुरु का सत्संग और ज़िक्रेखफ़ी (दिल के जाप) पर ज़ोर देते थे।

महात्मा जी की शिक्षा मनुष्यों के स्वभाव व परिस्थितियों के अनुसार एक मिली -जुली शिक्षा थी जिसमें कर्मकाण्ड, कर्मयोग,भक्ति योग, ज्ञान योग और प्रेम योग आदि सम्मिलित थे। ज्ञानियों को ज्ञान की शिक्षा देते और उनको उस विषय को ख़ूब समझाते थे। उनको सब मतों की धार्मिक पुस्तकों पर विश्वास था। वे प्रत्येक धर्म के महापुरुषों का आदर करते थे। उनका कहना था कि जिसने जिस धर्म में जन्म लिया है उसे उसी के अनुसार कर्मकाण्ड करना चाहिए। सदाचार से रहने पर वे बहुत बल देते थे। उनका कथन था कि जबतक सदाचार पूरी तरह ठीक नहीं हो जाता तब तक आत्मानुभव नहीं होता।

महात्मा जी का कथन था कि गुरु हर मनुष्य को करना चाहिए, लेकिन गुरु बहुत देख-भालकर करना चाहिए। एक बार गुरु धारण कर लेने पर अपने आपको पूरी तरह उनके आधीन कर देना चाहिए, जिस तरह मुर्दा जिन्दे के हाथ में होता है।

उनका कथन था कि जिस मनुष्य से तुमको डर हो और उलझन होती हो उसको अपना शुभ-चिन्तक और प्रिय समझो और ज़बरदस्ती इसका अभ्यास बढ़ाओ। एकान्त में बैठकर बिना किसी दिन चूके हुए, थोड़ी देर यह अभ्यास किया करो कि अमुक व्यक्ति मेरा मित्र है और शुभचिन्तक है।

जिस बात को अपने ऊपर पसन्द न करो, उसको दूसरे के साथ व्यवहार में न लाओ।

प्रेम से ही दूसरे को जीत सकते हो, दूसरा कोई तरीक़ा नही। यह बड़ा तप है।

नैमत (प्रभु की देन) का शुक्रिया यह है कि उसका उचित प्रयोग किया जाय और उचित प्रयोग यह है कि ऐसे कर्मों का त्याग कर दें जिनसे प्रभु की देन में गिरावट आती हो और वह कर्म अपनायें जो इस नैमत को स्थायी बनाने में सहायक हों।

चाहे आप अंग्रेजी टोपी पहनें चाहे हिंदुस्तानी लेकिन आपका दिल दरवेश-सिफ़्त (फ़क़ीरों की आदत वाला) हो। ' सन्त हृदय नवनीत समाना "। धीरे-धीरे काम करते रहो और मन को वश में करने की कोशिश करो। अन्दर से सँभालने की आवश्यकता है, बाहर स्वयं ठीक हो जायेगा।

सत्संग ऐसे लोगों को अपनाना चाहिए जो वास्तव में पूर्ण सदाचार से अपना जीवन निर्वाह करते हों, ईश्वर प्रेम से उनका दिल सराबोर हो और दूसरों को प्रभावित कर सकते हों।

उस परम पिता परमेश्वर ने कृपा करके स्वयं को तुम्हारे हृदय में रखकर अपनी सत्ता को पोशीदा (ढांप लिया) और तुमको ज़ाहिर कर दो।

परेशान किया जाना अच्छा है। घर, हिल्म और बर्दाश्त का स्कूल है। हमारे यहाँ इन्हीं बातों पर सब्र करना तप कहलाता है और यह तप सब तपों से ऊँचा है। बजाय ग़म और गुस्से के गैरियत अख़्त्यार करनी चाहिए। गैरियत कहते हैं उस आन्तरिक भावना को जिसमें दूसरों के कहने, सुनने और मलामत करने पर यह मालूम होता है कि वास्तव में मेरा ही दोष है और फिर उसे बर्दाश्त कर लेना पड़ता है। जहाँ और पंथों में जंगल में जा बसना, एकान्त वास, अभ्यास, सहन शक्ति और सँसार की झक-झक बक-बक से बचने के आदेश हैं, वहाँ हमारे यहाँ दोस्तों और दुनियाँ वालों की झिड़कियां, ताने, लानतें-मलामतें, रियाज़त (प्रभु का भजन) और उपवास ईश्वर प्राप्ति में सहायक है।

कुछ रीति रिवाज़ों को पूरा कर लेना लोगों ने धर्म या मज़हब समझ रखा है। मैं ऐसे धर्म को, चाहे वह किसी भी पंथ का हो, धर्म या मज़हब नहीं मानता। मज़हब वास्तव में फ़राग़दिली (विशाल हृदयता - broad mindedness) नेक सीरती (अच्छी आदतें), ख़ुशअख़लाक़ी (सदाचार) हमदर्दी (सहानुभूति

), यक़रुख़ी (एक विचार), अपनी शनाख़्त (आत्मानुभव) और प्राणी मात्र के साथ प्रेम और एकता का व्यवहार करना सिखाता है, न कि रिवाज़ों के बारे में बाल की खाल निकालना और अपने को फ़क़ीर कहना और कहलवाना।

शुरु-शुरु में परमात्मा की ख़ालिस चाह शायद हज़ारों में से एक-दो को होती है, और लोग अपना समय गवाते है। असली प्रेम यह है कि प्रेम, प्रेमी और प्रियतम सब ग़ायब हो जायें।

सांसारिक बाधाएँ परमार्थ में ईश्वर की तरफ़ से देन होती है। वे मुबारिक है। नहीं मालूम कौन-कौन से भेद उनमें छिपे रहते है। बहुत से आन्तरिक अनुभव इन ही पर निर्भर करते है।

जो व्यक्ति ईश्वर के विषय में वार्तालाप करता है और सत्य की खोज करता है वह आत्मा है और जिसकी उसको तलाश है वही परमात्मा है। यदि ऐसा नहीं है तो न तो मनुष्य की आत्मा (इन्सानी रूह) है और न उसका परमात्मा है।

जिस व्यक्ति की जितनी विवेक शक्ति तीव्र है उतनी ही उसकी आत्मा स्वच्छ है।

जहाँ आत्मा का प्रश्न आता है वहाँ अवश्य ही परमात्मा का प्रश्न आकर मौज़ूद हो जाता है। मैं और आप आंशिक ज्ञान हैं और ईश्वर पूर्ण ज्ञान है, बल्कि ज्ञान स्वरुप है।

इस ना चीज़ रूह (तुच्छ आत्मा) की क्या मज़ाल है कि पूर्ण ज्ञान का दावा कर सके। अगर मनुष्य मुक़म्मिल इन्सान नहीं बन सकता तो वह परमात्मा को देख नहीं सकता और न ही अपनी समझ उसको आ सकती है।

परमात्मा अवश्य है और एक है। अगर मैं और आप उसे देख सकें तो वह परमात्मा नहीं बल्कि कोई स्थूल चीज़ (material) है।

केवल इस भ्रम को दूर करने की आवश्यकता है कि ईश्वर है या नहीं, अथवा आत्मा कोई वस्तु है या नही। यदि यह भ्रम दूर हो जावे तो गुरु की कोई आवश्यकता नहीं है। गुरु तो केवल इस भ्रम को दूर करने का उपाय करते है। यदि कोई व्यक्ति स्वयं गुरु है तो फिर उसको हर चीज़ हासिल है। वहम का इलाज वहम से होता है। परमात्मा और आत्मा की तलाश वास्तव में स्वाभाविक है और यही मूढ़ता या वहम है और इसका इलाज भी वहम यानी गुरु से होता है।

स्वाध्याय की अपेक्षा महात्मा जी अभ्यास पर अधिक ज़ोर देते थे। कुछ दिन अभ्यास करने के बाद उसी अभ्यास के विषय में या तो स्वयं या मौखिक बता दिया करते थे या किसी पुस्तक में से उसी

शिष्य को पढ़ कर सुना देते थे। महात्मा जी का कथन था कि जब तक अभ्यास से मन शुद्ध न कर लिया जाय तब तक किताबों के पढ़ने से कोई अधिक लाभ नहीं होता है बल्कि अधिकतर अभ्यासी रास्ते से दूर जा पड़ते हैं। उनको झूँठा अभिमान अपनी विद्या का हो जाता है कि मैं सब जानता हूँ और जानते -बूझते कुछ नही। इसलिए अच्छा यही है कि आरम्भ में ख़ूब अभ्यास किया जाय और बाद को उसकी पुष्टि एवं जानकारी के लिए पुस्तकें देखें।

अपने प्रेमी जनों के लिए महात्मा जी का उपदेश था कि मख़दूम (स्वामी) बनने से सदा बचना, ख़ादिम (सेवक) बन कर दूसरों की सेवा करना, ऐसा वायदा कभी न करना कि इतने समय में अमुक अनुभव करा दूँगा, यह सब अहंकार की बातें हैं। सदा निस्वार्थ सेवा करना।

अमीरों, स्त्रियों और बच्चों की सोहबत से सदा बचो। इससे परमार्थ की हानि होती है।

भोजन पेट भर न करो। थोड़ी कमी रह जाय। इससे अभ्यास अच्छा बनता है। जो लोग धर्म की कमाई नहीं खाते उनका कश्फ़ (अनुभव) कभी सही नहीं होता।

दूसरों की बुराई अपने मुँह से कभी मत करो। यदि उनकी प्रशंसा नहीं कर सकते तो चुप रहो।

जिसने दाँतों बीच की चीज़ यानी जिह्वा और रानों के बीच की चीज़ यानी इन्द्री को वश में कर लिया उसने परमार्थ कमा लिया।

रामाश्रम सत्संग प्रकाशन " अमृत रस " से साभार

परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज द्वारा अपने एक प्रेमी -जन को लिखा गया पत्र

अज़ीज़े मन,

तुम्हारा ख़त मिलने से इस वक्त तक का ज़माना तक़लीफ़ों में गुज़रा है । मैं और मेरा तमाम ख़ानदान बीमार रहा । जिस लड़की की पारसाल शादी हुई थी और मेरी नवासी का इंतक़ाल ख़ास वाक़यात है। जहाँ तक मेरी समझ है और जिस क़दर मैं तहरीरी तौर पर इज़हार करने का माद्दा रखता हूँ, बहुत मुख़्तसिर अल्फ़ाज़ में आपके ख़त का जबाब देने की कोशिश करता हूँ ।हालांकि इस मामले में तहरीर और तक़रीर दोनों को आजिज़ पाता हूँ और उम्मीद नहीं है कि वह मतलब को पूरे तौर पर हलक़ के अन्दर उतार दे। मुझे आपके ख़त को देखकर यह ताज्जुब हुआ कि बहुत ज़्यादा हिस्सा ख़त का आपके सवालात का जबाब है।

नहीं मालूम कि आम लोगों ने ख़ुदा और रूह को क्या समझ रखा है। मेरी समझ में जो शख़्स की ख़ुदा के बाबत गुफ़्तगूं करता है और उसकी हक़ीक़त को तलाश करने वाला है वह रूह है और जिसकी उसको तलाश है वह ख़ुदा है ।अगर ऐसा नहीं है तो न तो वह इन्सानी रूह और न कोई उसका ख़ुदा है। चूँकि जानवरों का चलना -फिरना, ज़िन्दा रहना भी एक रूहानियत है और इंसान की भी - फर्क दोनों में सिर्फ कांशसनेस का है जिस क़दर कि जिस शख़्स की कुब्बते तमीज़ी ज़्यादा है उसी क़दर उसकी रूहानियत साफ़ है। इन्सान की तमीज़ी कुब्बत ही इस बात की दलील है की वह अपने सिवाय किसी दूसरी वस्तु को देखता, जानता और समझता है और अपनी मौज़ूदा हालत से ज़्यादातर जानने, देखने और समझने की हज़ारों तरह पर कोशिश करता है और करता रहेगा। वह यह समझता है कि मैं कुछ हूँ और यह भी समझता है कि मेरे अलावा दूसरी चीज़ भी है और यह भी समझता है कि मेरे और दूसरी चीज़ के समझने और तमीज़ करने कि कुब्बत भी दरम्यान में है । इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। अगर यह दरम्यानी कुब्बते तमीज़ी हर शख़्स में न होती तो वह हरगिज़ न अपने को समझता न दूसरों को। पस जो कुछ भी असल है वह कुब्बते तमीज़ी है। कुब्बते तमीज़ी के दर्ज़े और मरतबे हैं । मिट्टी और पत्थर के मुक़ाबिल दरख्तों और घास में कुब्बते तमीज़ी और दरख्तों के मुक़ाबले जानवरों में, और

जानवरों के दरम्यान बाज़ बाज़ बाज़ खास जानवरों में और फिर जानवरों के मुक़ाबिल ज़ाहिल आदमियों में, जाहिल आदमियों के मुक़ाबले ज़ाहिर आलिम आदमियों में और फिर ज़ाहिर आलिम आदमियों के मुक़ाबले बातिनी आलिमों में और बातिनी आलिमों में और बातिनी आलिमों के मुक़ाबिल अमल करने वाले लोगों में। यह सब तमीज़ी कुब्बतें अपनी अपनी हैसियत और दर्ज़ों के मुताबिक़ रूह हैं और जो चीज़ कि तमीज़ की जाती है वह भी अपने अपने दर्ज़े के मुताबिक़ उसका ख़ुदा -- एक हैसियत से रूह है और दूसरी हैसियत से ख़ुदा। इसके अलावा कुछ नही। यही रूह है और यही ख़ुदा की हस्ती। मैं और आप जुज़वी ज्ञान हैं और ख़ुदा मुकम्मिल ज्ञान बल्कि ज्ञान स्वरुप। जहाँ रूह का सवाल आता है वहां ज़रूरी ख़ुदा का सवाल आकर मौज़ूद हो जाता है। अगर रूह और ख़ुदा का सवाल न पैदा हो वहाँ भी बज़ाताहू रूह और ख़ुदा मौज़ूद है। मतलब यह है कि चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, रूह और ख़ुदा ज़रूर मौज़ूद है। अलबत्ता जानवरों की मानिन्द अगर किसी शख्स में इस क़दर रौशनी तमीज़ की गुम हो गयी है कि वह अपने आपको किसी दूसरी चीज़ से तमीज़ नहीं कर सकता तो यह नहीं कहा जा सकता कि रूह और ख़ुदा मौज़ूद नहीं है। (बल्कि यह कहा जायेगा कि उसमें क़ुव्वते तमीज़ी बिलकुल नहीं है) चमगादड़ अगर आफ़ताव को न देख सके तो आफ़ताव की अदम मौजूदगी नहीं साबित हो सकती। (बल्कि यह कहा जायगा कि चमगादड़ आफ़ताब को नहीं देख सकता) सितारे आफ़ताब की रौशनी में दिखाई नहीं देते मगर न दिखाई देने से उनकी हस्ती से इनकार नहीं हो सकता। अगर किसी औज़ार और आले के ज़रिये से किसी शख्स की विसारत (देखने की शक्ति) में यह क़ुब्बत हो सके कि वह सितारों को आफ़ताब कि रौशनी में भी देख सके तो यह खास बात होगी और वह ऐनुल-यकीन (पूर्ण विश्वास) के दर्ज़े तक पहुंचेगी कि आफ़ताब की रौशनी में भी उसने सितारों को देख लिया जो दूसरे बाकी लोग नहीं देख सकते थे। ख़ुदा और रूह कोई विज़िबल (दिखाई देने वाली) चीज़ नहीं हैं जो देखे जा सकें। अलबत्ता इल्म के अहाते थोड़ी बहुत आ सकती है। जैसा और जिस वक्त और जिस हैसियत का उसका इल्म होगा, जैसा कि ऊपर बयान किया गया है, वैसा ही उसका अनुभव **(realisation)** होगा। **realisation** इसी का नाम है, बाकी ढकोसले बाज़ी है। और ऊपर के बयान को राउंड अबाउट

(round about) एक्सप्लनेशन (explanation) भी समझ सकते हैं और हक़ीक़त भी। जैसी आपकी समझ हो। दूसरी तरह पर असली समझ कशफ़ी (प्रभु की कृपा द्वारा) हो सकती है जिसमें दलील की हाजत नही। कशफ़ी तौर पर समझा देना ऐसा है जैसा कि रामकृष्ण परमहंस जी ने स्वामी स्वामी विवेकानंद को कराया था। लेकिन मैं तो रामकृष्ण परमहंस नहीं हूँ, मुमकिन है कि आप विवेकानंद हों। रामकृष्ण परमहंस वाक़ई गुरु कहलाने के क़ाबिल थे और ऐसा ही गुरु होना चाहिए। लेकिन ग़ालिबन सिर्फ एक ही विवेकानंद जी ऐसे चेले भी थे, बाक़ी सब ऐसे हुए जो बतअदरीज (शनैः शनैः) इस मामले को पहुंचे होंगे। इस लिहाज़ से स्वामी परमहंस जी को भी न मालूम किस क़दर तादात को अर्से तक लटकाये रखने और धोखा देने के जुर्म के मुर्तकिब (दोषी) होते रहे। इस फ़क़ीर की तो गिनती ही क्या है ?

मैं इकरार करता हूँ कि अपनी मौज़ूदा हालत और अक़ीदे के मुआफ़िक मैं अनुभव (realise) कर चूका हूँ कि ख़ुदा भी है और रुह भी है और अभी नहीं मालूम कि ज्ञान कहाँ जाकर ठहरेगा और कहाँ इसका ठिकाना होगा। क्योंकि मुक़्क़मिल ज्ञान परमात्मा में ही है न कि रुह में, और जब यह सूरत है तो नाचीज़ रुह की क्या मज़ाल है कि **perfect realisation** *(मुक़्क़मिल ज्ञान) का दावा कर सके। आपको अख्त्यार है कि ऐसे मुक़्क़मिल आदमी को आप अगर चाहें तो तलाश कर लें।*

मैं मुक़्क़मिल गुरु होने का दावा नहीं कर सकता। प्राइमरी स्कूल का सबसे नीचा मुदर्रिस अपनी ज़ात से किसी अलिफ़ बे पढ़ने वाले को धोखा नहीं देता। एक गुरु और मुदर्रिस तो **MA** *क्लास को पढ़ाता है और एक प्राइमरी स्कूल के सबसे नीचे ' C' सेक्शन को। अगर बतदरीज (क्रमश) कशफ़ी तौर पर तालीम हासिल करने को आप रज़ामंद हों तो वक़्त को आप सर्फ़*

कीजिये। ख़्याली मनसूबों से क्या हो सकता है।? ज़ाहिरी इल्म के हासिल करने में आपको किस क़दर मेहनत, वक़्त, तंदरुस्ती, रुपया, खर्च करना पड़ा। उस वक़्त की आपकी उमर भी इस पुख्तगी को नहीं पहुँची थी जो इन मामलात को समझने के क़ाबिल होती और उसके बाद इस बक़्त तक अपने कोई अमली कोशिश नहीं की। दूसरी बातों की तरफ़ तवज्जह का रुख़ रहा है।

मैं आपकी तहरीर को मौहब्बत की निगाह से देखता हूँ। इसमें आप दरियाफ़्त हक़ीक़त कर रहे हैं। इसमें बुरा मानने की क्या बात है ? आपका ख़त का लिखना और दरियाफ़्त करना मुहब्बत की अलामत है और ईमान की रौशनी की मौज़ूदगी साबित करता है। वरना ग़ैर शख्स को ऐसी क्या ज़रूरत पड़ी थी जो मुझको लिखता। वाक़ई मेरी नियत लोगों को धोखा देने की नहीं है, न सब लोग जो आते हैं धोखा देते हैं क्योंकि साल भर के क्लास में पढ़ने की मुद्दत धोखाबाज़ी शुमार नहीं की जा सकती ।अगर क़ामयाबी किसी तरह नहीं होती तो अलबत्ता न पढ़ने की शिकायत हो सकती है। इसी तरह कुब्बते तमीज़ी (विवेक शक्ति) की सफ़ाई हासिल करने और उससे ज़्यादे ताक़त बढ़ाने की कोशिश में जो मुद्दत सर्फ होती है वह इम्तिहान के वक्त तक आने के लिए तालीम की हैसियत ख़्याल की जाती है न की वक्त ख़राब करने की और धोखेवाजी की। अगर लोगों ने मेरी तालीम को जज़्ब (ग्रहण) नहीं किया तो यह मेरे तर्ज़-तालीम (शिक्षा) की ख़राबी शुमार की जा सकती है या मेरी ख़ामी (कच्चेपन) की। और दूसरें लिहाज़ से तालिबइल्मों (साधकों) की कमी तवज्जो और **slackness** (बेपरवाही) की है। आपने कुम्भ में मुझको तलब किया। सरकारी काम की वजह से आप दौरे चले गए। आपकी गैरमौज़ूदगी में मैं दूसरे शख्स के यहां ठहर गया आप वापिस आ गए और मैं कई रोज़ तक ठहरा रहा। आप क्यों मेरे पास तक नहीं आये।? इसमें आपका क़सूर है या मेरा।? आपको मेरे पास आकर कहना चाहिए था की मैं दौरे से वापस आ गया हूँ, अब मेरे पास चलो।

तहक़ीक़ात और असलियत समझने के किये आमतौर पर दो तरीक़े हो सकते हैं (१) जो दुनियां की हर चीज़ को देखकर, समझकर और उससे तजुर्बा हासिल करता हुआ चले और फिर **material world** यानी माद्दी दुनियाँ की हर चीज़ की तहक़ीक़ात ख़तम करके **spiritual world** (रूहानी संसार) की तरफ़ मुँह मोड़ ले। (२) या दूसरी तरह पर **material world** की तरफ़ से आँख मीच ले और **spiritual world** की तरफ़ चल पड़े।

दुनियाँ की हर चीज़ से ताल्लुक़ करने से तजुर्बा होता है। पस जो शख़्स इस तरह पर दुनियांदार हो कि वह पहले अपने आपको दुनियांदार मुक़्क़मिल साबित कर दिखावे तब वो वाक़ई दूसरी तरफ़ पलटेगा। पस मुमकिन है कि श्रीकृष्ण इस रास्ते को पसन्द करता हो और यही रास्ता उसने अख्त्यार किया हो। जब वह मुक़्क़मिल दुनियादार हो जायेगा, पलट पड़ेगा। अगर आपने इस तरीक़े निहायत बुरा समझा हुआ है तो आप इसके बरख़िलाफ़ रास्ता अख़्त्यार कीजिये, यानी दुनियाँदार न बनिये और यही रूहानियत और खुदा-परस्ती है । वाक़ई यह है कि मेरी तालीम दुनियाँदारी सिखाती है। अगर इन्सान मुक़्क़मिल इन्सान नहीं बन सकता तो वह ख़ुदा को नहीं देख सकता और न ही अपनी समझ उसको आ

सकती है। अगर मुक़्क़मिल दुनियांदार बन गया तो वह इस क़ाबिल हो सकता है कि अपने आपको समझ सके और ख़ुदा को देख सके।

दुनियांदार वही है जिसका मन दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द पाता हो। जब दुनियाँ की हर चीज़ में मन लगाकर आनन्द हासिल कर लेगा और असली आनन्द उसमें न पावेगा तो फिर दूसरी चीज़ को पकड़ेगा और इसी तरह पर हर चीज़ को लेता जावेगा और छोड़ता जावेगा। आख़िरकार वह उस चीज़ पर पहुँचेगा कि जिसमें हमेशा का आनन्द होगा और वही ख़ुदा है। पस अगर कोई शख़्स बावजूद समझाने के इस तरीक़े पर चलने को रज़ामंद न हो और सहल तालीम को क़बूल न करे तो मेरी तालीम का सिर्फ़ इस क़दर क़सूर है कि उसमें ज़ोर नहीं है। लेकिन तालीम की शकल तो वाक़ई हक़ीक़ी तालीम की है।

सालना भण्डारे की हक़ीक़त एक मुज़ाहिरा (दृश्य) है जिसमें लोग एक दूसरे से ख़्यालात का तबादला करते हैं और आइन्दा तरक़्क़ी का ज़रिया सोच लेते हैं, इससे ज़्यादा कुछ नहीं।

आपने यह कैसे समझ लिया कि सब तादाद नाक़ाबिल जमा होती है और सब बेहूदा लोगों की मजलिस है। दूर बैठे हुए बदगुमानी पैदा कर लेना जायज़ नहीं है। ख़ुदा ज़रूर है और एक है। अगर मैं और आप उसको देख सकें तो वह ख़ुदा नहीं है बल्कि कोई **material** (मायावी) चीज़ है। इन्तहाई अक़्ल इन्सानी (मनुष्य की बुद्धि की पराकाष्ठा) को रूहे इन्सानी

(जीवात्मा) कहते हैं और यह तमीज़ की मेरी अक़्ल किसी दूसरे के मुक़ाबिल निहायत आजिज़ और हक़ीर (नम्र व

तुच्छ) है , ऐन ताबेदारी ख़ुदा की है क्योंकि एक तरफ़ हक़ीर चीज़ अक्ले-इन्सानी (मनुष्य की बुद्धि) है जो रूह कहलाती है और दूसरी तरफ़ कामिल अक़्ल और ज्ञान (सर्वज्ञता) है जो ख़ुदाइयत (ईश्वरत्व) है।

आपकी ख़ुशी है कि अब आप नास्तिक हों या आस्तिक रहें क्योंकि अगर आप नास्तिक होंगे तो किसके मुक़ाबिल। बहरलाल आस्तिक होने का बरख़िलाफ़ (प्रतिकूल) ख़्याल आपके इल्म में बाक़ी रहेगा। बहतर तो यह है कि आप न आस्तिक हों न नास्तिक तब तो ख़ैरियत है। हमारे यहाँ ख़ुदा को न मानने वाले को नहीं कहते बल्कि उसको नास्तिक मानते हैं जो कर्म, मन और वचन से ऐसे काम और ख़्यालात का इस्तेमाल करता हो जिससे अपनी **spiritual, intellectual, mental and physical bodies** ।(आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक, एवं शारीरिक तत्वों) का नुकसान होता है और बर्बाद होते हैं और जिन कामों और ख़यालात से दूसरों पर ऐसे असर पड़ते हैं जिनसे वो बर्बाद हो जाएँ, और आस्तिक

उसके बरख़िलाफ़ ।पस अगर दिल वगैरह सब ऐसे हैं कि जो अपने किसी शरीर को बर्बाद न कर सकें तो आदमी चाहे नास्तिक हो या आस्तिक कुछ परवाह नही। आप अभी सब कुछ हैं और सब क़ाबिलियत आपके अन्दर मौजूद है। रूह आपके अन्दर, ख़ुदा आपके अन्दर, सिर्फ़ इस वहम को दूर कर लेने की ज़रूरत है कि ख़ुदा है या नहीं, रूह कोई चीज़ है या नही। अगर यह दूर हो जाये तो गुरु वग़ैरह की हाजत (आवश्यकता) नहीं - गुरु तो सिर्फ़ इस वहम को दूर कराने की फिक्र करते है। अगर कोई शख़्स ख़ुद ही गुरु है तो फिर उसको हर चीज़ हासिल है। बहम का इलाज बहम से होता है। ख़ुदा और रूह की तलाश बाक़ई कुदरती है और यही जहालत (मूढ़ता) और वहम (भ्रम) है ।

संसार के सुखों की वजाहत

हम सबको सुख की ख़्वाहिश है। सारी ज़िन्दगी सुख के लिए यत्न करते रहते है। कोई काम ऐसा नहीं होता कि जो सुख की निमित्त न हो। हम चाहते रहते हैं कि हमको सिर्फ़ सुख मिले, दुःख न मिले। सामान खुशमवार हों, नाखुशमवार सामान से तअल्लुक़ न रहे। मगर ऐसा नहीं होता, क्योंकि संसार के सुख, दुखों के साथ मिले हुए है। उनमें सुख, दुःख दोनों में हमारी निगाह सिर्फ़ सुख कि तरफ़ जाती है। दुःख का ख़्याल नहीं करते और नादानिश्ता सुख से तअल्लुक़ पैदा करते हैं, दुःख से हम किनार होते है। मसलन :- एक तजर्बेकार नौजबान को शादी की हबिस है। वह यह तो जहन नशीं किये हुए है कि शादी से आनन्द प्राप्त होगा, मगर इस तरफ़ से आँख बंद रखे है कि शादी के साथ ही तरह २ की जिम्मेदारियाँ है। स्त्री के पालन पोषण के लिए साज सामान वग़ैरह की ज़रूरत होगी। इसके सिलसिले में आस औलाद वग़ैरह बढ़ेगी, उसकी परवरिश व तालीम वग़ैरह, शादी के लिए कितने झगडे सर पर लेने होंगे, अलाहाजुल्कयास संसार के तमाम सुखों का यह ही हाल है। इनकी जाहिरी सूरत दिल फरेब है। मगर इनके सिलसिले में दुःख ज़रूर होता है और होना भी चाहिए, क्योंकि श्रष्टि में इस तबक़े में चूँकि मुरक्क़िब रचना है इसलिए हम हज़ार कोशिश करें, हज़ार बेहतरी की उम्मेद रखें मगर संसारी सुख की ख़्वाहिश के सिलसिले में दुःख ज़रूर होगा। दुनियाँ में हमारी ख्वाहिश या हमारी हालत कभी एक तरह की नहीं रहती, हमेशा तब्दीली हुआ करती है। जिस चीज की हम आज कदर करते रहते हैं, कल उसको फेंक देते है। आज जिससे प्यार है, कल उसी से नफ़रत होगी। और आज जहाँ राग है,वहाँ कल द्वेष है। आज की ख़ुशी कल के ग़म में तब्दीली होगी। लोग कहते हैं कि यह हालत हमेशा न रहेगी। मन की दुचिताई दूर हो जावेगी। मगर नहीं यह गलती है। आने वाले ज़माने की सिर्फ़ नशवोनुमा होती है। जो तुम आज सोचते समझते, करते, धरते वग़ैरह हो उसका संस्कार बीज रूप में तुम्हारे चित्त के पर्दों में कायम होता जायगा, और कल को इसमें कोपल होगी और फल देने लगेगा। इसकी हालत बिलकुल उस बीज के मुशावह है, जो ज़मीन के अन्दर दफ़न है। कैसे कोई यकीन कर ले कि मुवाफ़िक़ हालत पाकर बीज में अँखुआ न आएगा। और फिर इसमें पत्ते, फूल, फल सभी आयेंगे। इसी तरह से जो कर्म और ख़्वाहिश वग़ैरह आज की जा रही है, उनका संस्कार चित्त में क़ायम होकर के ही आयन्दा के लिए सुख के साथ दुःख होगा। इससे बचाव नहीं है।

जिस तरह से दुःख तीन तरह के हैं, उसी तरह संसारी सुख भी तीन तरह के हैं - अधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। भूतों, प्राणियों और तमाम अशिया के सच्चे व्योहार और व्योहार का सुख अधिभौतिक है। तुम्हारे मवेशी हैं, नौकर और चाकर वग़ैरह हैं, बहुत कुछ माल असवाब वग़ैरह हैं, इनसे

जो सुख मिलता है वही अधिभौतिक कहलाता है। सर्दी में गर्मी और गर्मी में सर्दी अच्छी लगती है। जाड़े के दिनों में सूर्य देवता बहुत प्यारे मालूम होते है। रात के वक्त चाँद सुहाना लगता है। वारिश से प्राणी सुखी होते हैं - ये सब देवता है। इनसे जो सुख प्राप्त होता है वही आधिदैविक है। भोग विलास वग़ैरह यह सब ही मन की तरंगें है। जिस्मानी व नफ़्सानी लज़्ज़ात वग़ैरह आध्यात्मिक सुख कहलाते है। तीनं तरह के संसारी दुखों की तरह पर ही सब सबसरी सुखों की भी हालत है। गौर करके देखना चाहिए, इनमें से किसी के एक पहिलू है या दो दो पहिलू हैं, और फिर समझ जाना चाहिए कि जहाँ इनमें सुख है वहाँ इनमें दुःख भी है। दर्द सर के वास्ते संदल लगाना है मुफ़ीद। इनका घिसना और लगाना दर्द सर यह भी तो है। कौन ज़्यादा देर तक सूर्य की गर्मी सेंकता रहता है और कार्य नहीं करता। यह माना कि दिली और अक़ली सुखों का दर्जा बड़ा है। आध्यात्मिक सुखों का वह हिस्सा जो दिल व दिमाग़ वग़ैरह से सम्बन्ध रखता है और बहुत ही ख़ुशी-रहिन्दा वग़ैरह है, इसमें शक नहीं। मगर जितना है यह ही अच्छा है। इतने ही आध्यात्मिक दुःख बुरे है। आदमी को जो तकलीफ़ आध्यात्मिक यानी दिली दुखों से होती है और किसी से भी नहीं होती। जो चीज़ कि जितनी लतीफ़ होती है इतनी ताक़तवर और इतनी ही सुखदायी होगी, मगर जिस तरह इसकी लताफ़त ताक़त सुखों के बढ़ाने का काम देती है, वही ताक़त दुखों को भी ज़्यादा दर्ज़े का बना देती है। इन्सान जब भी अपने प्यारे दोस्तों, रिश्तेदारों वग़ैरह को याद करता है जिनसे उसको मुहब्बत थी, किस तरह दुःख को महसूस करता है। इन्सान जब मौज़ूद हालत का अन्दाज़ लगते हुए आयन्दा हालत का नक़्शा ख़याली निगाह के सामने क़ायम करता है, उसको यों ही किस तरह मुसीबत का निशाना बनना पड़ता है, यह आध्यात्मिक ताक़त की खूबयाँ है। इनकी तरफ़ हमातन मुतबज्जह हो जाना, एक तरह की ग़लती है। जो सुख, दुःख, बध, मोक्ष, मेरा, तेरा वग़ैरह संसार में नज़र आता है, वही आध्यात्मिक खेल है। इससे ज़्यादा इसकी हक़ीक़त नही। जिससे दिल लगा, वहाँ ही तअल्लुक़ पैदा हुआ, कैद की हालत ख़ुद व ख़ुद आगयी। देखो आप बन्धे हैं किसी ने इनको बाँधा न था और बांधने वाला मन ही तो है। इसलिए इन सुखों की चाल में फँसना नादानी है। मेरा और तेरा अपना वग़ैरह की जड़ काटना ही मज़हब की असली ग़र्ज़ है। ताकि परन्तु की नफ़सानियत की नाइक की तमीज न रहने पावे। अधिभौतिक और आधिदैविक सुख वग़ैरह इतने दुःख नहीं पैदा करते क्योंकि इनकी जो मिक़दार सुख की है, उतना ही दुःख भी होगा। मगर आध्यात्मिक शक्ति चूँकि बहुत सुख पैदा करती है वह दुःख भी अपने साथ बहुत लाती है। संसार के सारे सुख, इन तीनों के सिलसिले में ही आ जाते हैं, मगर इनकी स्थूल हालत की इस शकल की जिसमें प्राणी ज़्यादा गिरफ्तार रहते हैं, थोड़ी सी वज़ाहत कर देनी ज़रूरी है। अधिभौतिक यानी संसार भोग व तलाश वग़ैरह के सामान में जो लोग ज़्यादा मुब्तला हैं उनकी हालत ना गुफ़्तावे है। इनके इस ख़ास सुख के आदर्श जुदा जुदा ही हैं,

कोई किसी में सुख तलाश करता है, कोई किसी में तलाश करता है। मिसाल के तौर पर समझो - एक शख़्स ने दौलत व माल वग़ैरह ही को सब कुछ समझ रखा है। उसकी ख़ुशी इस बात में है कि उसके पास रुपया हो। जवाहिर वग़ैरह की कसीर सरमाया जमा हो जावे। पहिले अगर आरज़ू थोड़ी थी तो रुपया की प्राप्ति के साथ उसकी हवस बढ़ती गयी। हविस की तरक़्क़ी में, इसके कई तरह के नुक़सान पैदा हो गये, अव्वल चूँकि धन व दौलत वग़ैरह सब कुछ इकट्ठा करने की तरफ़ दिल की तमाम ताक़त मसरूफ थी। इसलिए अब दिल में इसके भोगने की ख़्वाहिश अगर सम्भव नहीं है तो इसमें हद दर्ज़े की कमी आती जा रही है, दूसरे इसको इसके नुक़सान के ख़्याल से दुखी होकर अच्छे मकान बनाने, अच्छी फ़ुफ़ल लगाने, मशहूर, मज़बूत और होशियार वग़ैरह चपरासी रखने का ख़्याल होने, तीसरे वह इसकी वजह से हर शख़्स से खिंचता रहेगा कि कोई शख़्स धोखा देकर इस माल जमा व धन वग़ैरह से महरूम न कर दे। इसकी हमदर्दी न सिर्फ़ ग़ैर व बेगानों से, बल्कि अपनों से भी जाती रहेगी और बाद में भी हमदर्दी व मुहब्बत वग़ैरह की कमी बतौर ख़ुद दुःख का सरूप है। अल्गर्ज़ इसी तरह जो कोई ज़रूरत से ज़्यादा संसार के सुखों के तमन्ना में पड़ता है, उसको किस क़दर दुखों का आमदअगाह बनना पड़ता है और आख़िर वह इसी नतीज़े पर पहुँचता है कि संसार में दुःख ज़्यादा है और सुख कम। अल्गर्ज़ संसारी सुख की एक ऐसी मिसाल सी समझ लो कि सारी उम्र इसी के होकर राहत में ख़ैरियत है या नहीं।

संसार के दुखों की वज़ाहत

दुनियाँ में तीन तरह के दुःख हैं, आधिदैविक, अधिभौतिक, आध्यात्मिक। आधिदैविक उन दुखों को कहते हैं जो देवताओं की वजह से होते है। कुदरत में जितनी कि सब मौजूदह ताकतें हैं, वह देवता कहलाती हैं, मसलन - चाँद, सूर्य, बिजली, वग़ैरह।

कारकुनान कुदरतन तमाम ब्रह्माण्डान से भरा हुआ है। शक्ति तो फिर असल में एक ही है, मगर इसकी सूरतें बेशुमार है। यह चाँद, सूर्य, यह सितारे, यह बिजली वग़ैरह, इसके अनेक रूप है। इन सबकी बज़ाहट मुहाल है, न तो कोई इनकी तफ़सील सुना सकता है और न इनकी फिहरिस्त। अगर कोई शख्स दावा के साथ यह कहना चाहे कि यह तादाद मुझको मालूम है, तो शायद उसकी जुर्रत न हो सकेगी, सिर्फ इस क़दर काफी है कि यह तमाम ब्रह्माण्ड, कुदरत की बेशुमार कुब्बतों से भरा हुआ है। और यह हर जगह मुहति रह कर निज़ाम कायनात में काम करती रहती है। इनके काम दो तरह के होते हैं - एक बनाना और दूसरा बिगाड़ना। जिस वक्त बीज दरख़्त से पैदा होता है बुनियाद शक्ति, शिन्धार शक्ति, रंग आमेली शक्ति, बढ़ाने की शक्ति वग़ैरह इसके गिर्द मंडलाती हुई, इसको ख़ूबसूरत, बहुत अच्छी तरह से बनाती हैं और बढ़ने का मौक़ा देती है। दिल उन्हीं की मदद से फूलता फलता वग़ैरह हैं, और नैरंगी कुदरत का तमाशा दिखाता है। यह तमाम कुदरत की ताकतें लतीफ़ हैं, उन सबका आकार है, उनका खास खास वग़ैरह रंग है, इनका खास खास वग़ैरह सूरत हैं, मगर ये सब इस कदर लतीफ़ हैं कि नज़र नहीं आते और इसी वजह से इनको निरूप और निराकार कहा जाता है। मगर इनके काम की सख्ती देखिये, और इसलिए उनकी हस्ती का अनुभव होता है। बाज इनमें से महसूस की जा सकती हैं और बाज महसूस नहीं की जा सकती है। मगर जब वह अपनी लताफ़त को कसीफ़ तबके में मुस्तकिल कर देती हैं, तब इनको देखा, सुना, छुआ भी जा सकता है। जैसे सूर्य का लतीफ़ सूरत को देखना मुहाल है मगर जब वह अपनी ताकत की धारों को घना कर लेता है, तब उसकी शक्ल बन जाती है और हम लोग देख और छू वग़ैरह सकते हैं और जान सकते है। इस स्थूल से तबके की तीन जहाम हम नशिस्त रखते हैं और उस वक्त तक किसी ताकत का इल्म नहीं हासिल कर सकते जब तक की वह हमारी सूरत न बन जावें। इल्म एक तरह ही का तो नहीं होता। इन्सान को पाँच तरह की इन्द्रियाँ मिलती है। इन सबके ज़रिये से जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह इन्द्रियों का ज्ञान है। मन छटा इन्द्रिय है जो इन सबसे ज़्यादा लतीफ़ है। उसको अनुभव ज्ञान व विचार ज्ञान वग़ैरह नहीं होता। ग़र्ज़े की कुदरत की ताकतों की समझ की कदरान छः इन्द्रियों से आती है। और यह इनके समझने के साधन और औजार वग़ैरह हैं और इनका इनसे सम्बन्ध है। जिसका जिसके साथ सम्बन्ध होता है और तअल्लुक वग़ैरह होता है वही

उसको समझ सकता है, दूसरा कभी नहीं समझ सकता और इसी वजह से ऊपर कहा गया है कि जब तक क़ुदरत की लतीफ़ ताकतें हमारी कसीफ़ न बन जाय, तब तक हमको इनका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। मिसाल से इस तरह समझिये कि सूर्य ख़्वाह अग्नि जो रूप का भण्डार है, जब तक हमारी आँखों की सूरत में नहीं आता हम उसको देख नहीं सकते। सूर्य अग्नि और हमारी आँखों में वामुशावहत, मुनासिब और मुताविकत है। जल जो वरुण देवता हैं, इसका भण्डार है, जब तक यह सारी कुब्बत जायका की तरह सकल सूरत नहीं इख्तियार करता हम उसके रस का मज़ा नहीं चख सकते। इसलिए वरुण, जल और हमारी ज़वान कुब्बत जायका में मुशावहत, मुनासिवत और मुताविकत है। वायु देवता स्पर्श का भण्डार है, जब तक कि वह हमारी त्वचा (चर्म) की सूरत नहीं इख़्तियार कर लेता, ख़्वाह हवा जब तक जरा ज़ोर से नहीं चलती, तब तक हम उसको नहीं छू सकते। वायु में और हमारी त्वचा वग़ैरह में मुनासिवत, मुताविकत और मुशावहत है। दिक्षा देवता शब्द से फिरून है। कान से मुताविकत है, विशनी कुमार जो गंध का देवता है, नाक की मुशावहत है। मन का देवता ब्रह्मा है जोकि संकल्प, विकल्प वग़ैरह का अधिष्ठाता है। ये सब क़ुदरत की ताक़तें दुःख वाली हैं, मसलन कोई शख्स धूप की गर्मी सख्ती बरदाश्त न कर सका, बीमार हो गया। दूसरे पर बिजली गिरी, तीसरे को मौसम सर्दी ने परेशान कर दिया, चौथे को चांदनी की कसरि ने बाबला बना दिया, पाँचवे को और तरह की रंज हुई, और फिर इस निज़ाम शमसी में जितने वारामण, और सप्पारे और नवावत हैं, उनके ख़ास वग़ैरह असरात होते हैं। बुद्ध का असर, मंगल का असर, वग़ैरह, वग़ैरह। जब यह ख़ास ख़ास वग़ैरह रौशनी में आते हैं तो जीवों पर इनका ख़ास ख़ास वग़ैरह असर पड़ता है, मसलन हम चिराग़ ही के सामने बैठते हैं तो अकसर आँख को असर होता है और रौशनी से आँख चढ़ जाती है। बाहर हवा चल रही है। एक शख्स उसी हवा में खूब चल फिर रहा है, कुछ असर नहीं होता। दूसरा इस हवा में बीमार हो जाता है। यह सब मुख्तलिफ हवा के लिहाज़ से असरात होते है। निजाम शमस का सिलसिला हमेशा गर्दिश में रहता है, गर्जे कि किसी किसी पर बुरा असर पड़ता रहता है। कौन शख्स ऐसा है जो कह सके कि तीन मौसमों की सख्ती से हमेशा महफूज रह सकता है। इसकी ज़द में सभी आ जाते हैं, कोई किसी से दुखी हो, कोई किसी से दुखी हो, कोई किसी से खाली नहीं है। यह दुःख अधिदैविक कहलाता है। कि जो क़ुदरत की ताक़तों के ज़रिये से पहुँचा करता है।

दूसरा दुःख अधिभौतिक है। यह दुःख जीवों से जीवों को पहुँचता है। क्योंकि तमाम भूतों यानी पंच अनासर से यह सब बने होते हैं इसलिए इनको भी भूत कहते है। यह दुःख भी वैसा ही आम है, जैसा कि आधिदैविक। यह दुःख लाखों -करोड़ों दुखों में तक़सीम किया जा सकता है। आदमी- आदमी का दुश्मन। शेर, चीते वगैरह, मच्छर, पिस्सू, खटमल वग़ैरह कोई किसी का दोस्त है कोई किसी का दुश्मन।आग की

जिद पानी, मीठे की जिद कड़ुआपन, धूप की जिद साया, सेहत की जिद बीमारी, और मज़ा यह है कि ये सब साथ-साथ रहते है। एक दम भी एक दूसरे से जुदा नहीं होते। और मौका मौका वग़ैरह पर अपना काम निकालते रहते है। पानी में जहाँ कँवल है वहाँ जोंक भी है। गुल है वहाँ खार भी है। गुलाब की पंखड़ियों में जहरीले कीड़े रहते है। ख़ुशी के साथ ना ख़ुशी। इस वजह से और इस दुनियाँ को द्वन्द की रचना कितनी है। यहाँ अजतमाच जिद्दैंन है। और मुरक़्क़ब रचना में मेल जोल वग़ैरह का होना लाजिमी है। पुरुष के साथ प्रकृति है। मुफरिद रचना अलबत्ता और तरह की होंगी। आप क्या नहीं देखते कि तुम्हारे मिलने और दिलों में बाज बाज वग़ैरह को कोई मतलब नहीं। लेकिन बाज हुआ करता है। जिसकी असलियत का किसी को क्या इनको खुद पता नहीं होता, जिद के मारे तरह तरह की शरारतें करते हैं और खुद भी आग की तरह भुने जा रहे है। उनका फ़ायदा चाहिए इससे कुछ हो या न हो, लेकिन वह जिद से बाज नहीं आते, यहाँ तक कि दूसरों की बुराई के वास्ते अपने को बरबाद कर देते है। औरों की बदसगुनी के वास्ते अपनी नाक तक कटवा डालते है। वसीय नज़र से देखा जाय तो इसमें किसी कदर सच्चाई है। बाज़ महात्मा संसार का उपकार करने के लिए आते है। मगर भलाइयों ने इनको मस्लूब किया। ऊपर चढ़ाया और फिर यह कि खाने में ज़हर दिलवाया, आग में जला दिया, जेलखानों में डाला, यह क्यों, क्योंकि वह उनकी जिद थी, दूर क्यों जाते हो, घरों में ही एक दूसरे की जिद हुए है। यहाँ भाई भाई वग़ैरह का दुश्मन बाप, बेटे, स्त्री पुरुष की दुश्मन। महाभारत को देखो, सब मालूम हो जायेगा। यह अधिभौतिक दुःख है। दुनियाँ में कौन ऐसा सखी का लाल है जो इस दुःख से महफूज है। राम तेरी माया द्वन्द बचाये।

तीसरा दुख आध्यात्मिक है जिसका तअल्लुक़ अपनी आत्मा के साथ है। यह जानकर ताअज्जुब होगा कि क्योंकर और किस तरह इन्सान अपनी आत्मा में दुःख पैदा करता है। मगर हकीकत यह है कि तुम भले चंगे हो, होठों पर मुस्कराहट है, तबियत खुश है, और देखो कि एक लमहे में हालत बदल गयी और चेहरे पर शिकन है। त्योरी बदली है। पेशानी पर झुरियाँ पड़ गयीं, आँखों की चितवन देखकर ख़ौफ़ लगता है। रग रग वग़ैरह में गर्मी आ गयी, जिस्म कप रहा है। क्या हो गया, बात की बात में हालत बदल गयी। इसका सबब क्या है ? कहाँ गया था, क्या हो गया बैठे हुए, आदमी हैरान है, कोई बात किसी के समझ नहीं आती, कोई हल नहीं कर सकता, मगर उस सबका सबब, खुद उसका दिल है।

दोहा - घटत समुद्र लख न पड़ै, उतिस लहरा पार !

मिल दर्या समरथ बना, कौन   लगावे पार !!

एक वेपायां किनार समुन्द्र मौंज में है। आसमान से बातें करने वाली लहरें इसमें उठा करती हैं, ज्वारभाटे आते हैं, गर्जे कि देखने वालों को वहशत होती है। मन में तरंगें उठती रहती है। कितनी वह खुशगवार है। कितनी नाख़ुशगवार हैं जब दिल में गुस्से का ख़्याल आ गया। एड़ी से चोटी तक आग लग गयी। रंज के जज़्बात की बारी आयी, तमाम मझोल नाकार और सुस्त वग़ैरह हो गया और न किसी से बोलना न चालना, न किसी की सुनते हैं, न कहते है। आँखों से आँसुओं की धार जारी है। लबों पर ठण्डी आहें है। अगर उस वक्त पर कोई चित्रकार आदमी हो तो उनकी तसबीर खेंच लो। किसी शायर को हौसिला हो तो अपने लफ़्ज़ों में और उनके सिलसिले में उनके दुःख का नक्शा दिखलालो। अगर यह मुशिकल है। बात कुछ नहीं थी, सिर्फ ख़्याल ही ख़्याल था। ख़्याल ने हालत बदल दी और कुछ के कुछ बन गए। इस ख्याली दुःख को, ख्याली कुल्फ़त को, इस संगलिप की मुसीबत को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं और कौन ऐसा वशर है जो इसकी सुस्ती से इन्कार का दावा कर सका। ऊपर के दोनों दुःख ख़ौफ़नाक तो ज़रूर हैं, मगर यह उनसे ज़्यादा ख़ौफ़नाक है। उन दोनों का तअल्लुक़ तो खारिजी दुनियाँ से है वह निस्वतन वयीद है। यह करीब है। इसलिए इन्सान उससे और भी परेशान रहता है। जिन्नत के दर्मियान संग मरते रहते हैं और एक दम के वास्ते क़रार और शान्ति वग़ैरह नहीं होती। यह मन का दुःख तमाम दुखों से बुरा है। बड़ा ही ख़ौफ़नाक है और उसका मुक़ाबिला आधिदैविक और अधिभौतिक वग़ैरह से नहीं किया जा सकता। वह इसके पासंग ही को नहीं पहुँच सकता। खुद अपने आपको मसमूम और हलाक वग़ैरह करता रहता है और अन्दर ही अन्दर आग सुलगा कर गोश्त -,पोश्त और हड्डियों को जलाता रहता है। यह दुधारी छुरी है जो कलेजे को चीरती रहती है और दुखों का अन्तर जबरुई होता है इसका रंग रग रग में सराहत कर जाता है। अपने ही आप पैर में कुल्हाड़ी लगाते हैं और ख़ुद अपनी चिता तैयार करते हैं। आधिदैविक और अधिभौतिक दुखों की चाल एक तरह की है। यह दो तरफ़ा चाल चलता है। दो तरह के असरात बाहर से आते हैं और हममें दाख़िल हो जाते हैं। आध्यात्मिक दुःख ख़ुद ज़हर पैदा करता है और बाहर की तरफ़ से भी दुःख पैदा करने का और फिर यह कि सामान इकट्ठा करता है। मसलन एक शख़्स ने बुरे ख़्यालात पैदा किये, दिल को मसमूम हो गया, अब दूसरों से लड़ने लगा, गालियाँ दीं, हाथ चला दिया, अब बाहर की तरफ़ से हज़ारों किस्म के दुखों का हमला होने लगा, जो आता है, वह ही लड़ता है। खून खराबा वग़ैरह हो जाता है। तलवार चल जाती है और फिर जेलखाने जाते है। अदालत होती है। रुपया बरबाद जाकर मुफ़लिसी घेरती है। आग अन्दर है।

आग बाहर है। चारों तरफ़ आग लगी हुई है। सुना होगा कि हम जिन्स अपने जिन्स को खींचा करता है। यह कुदरती उसूल मालूम होता है। इसलिए जो शख़्स बुरे ख़्याल का आदमी होता है, वह आकाश मण्डल में बिखरे हुए बुरे ख़्यालों को अपने दिल में नादानिश्ता जगह देता रहता ही है। इसके मन, वचन, कर्म सैकड़ों और फिर तो हज़ारों वग़ैरह बुराइयाँ पैदा होने लगती हैं और दुनियाँ में वह मुजरिम बन जाता है। जो जुआ खेलने लगा, जो झूठ बोलने लगा, बेईमान ज़रूर होगा और फिर यह खूबी बेईमान चोरी ज़रूर करेगा, जो चोरी करेगा वह हिन्सा और दिलाज़ारी के जुर्म का मुर्तकिज़ होगा और जिसमें हिंसा आई वह घोर पापी बन जावेगा और वह हिन्सा महापाप है। यह सिलसिला हमेशा यों ही चलता है। जिसमें एक पाप है। वह और हज़ार पापों को अपने में शामिल कर लेता है। पाप की जड़ें 'मन' है। और ज़बान और हाथ वग़ैरह उसके इज़हार के दो स्थूल सूरतें है। इस बुरे ख़्याल की बदौलत वह दूसरे की बुरी बुरी सुहवतों को इख़्तियार कर लेता है। अन्दर बदी व हर बदी-बद अन्देश आदमी अपने बुरे ख़्याल को अपने अन्दर से रेशम के कीड़े की तरह निकालता रहता है और ख़ुद ही फसता है और दूसरों को भी फसाता है। आदमी बीमार क्यों होता है ? महज़ अपने ख़्याल से। दुखी क्यों होता है ? अपने ख़्याल से। ख़्याल ही गुस्सा दिलाता है। ख़्याल से ही शहवत पैदा करता है। ख़्याल ही से लालच आता है। मुँह भी ख़्याल ही से अहंकार की पैदायश है। यह सब आध्यात्मिक दुख ही नहीं हैं जो हज़ारों शक्लें रखते है। इसके लिए दफ्तर चाहिए। एक मर्ज़ का इलाज चाहे मुमकिन हो, मगर हज़ारों का इलाज कैसे हो सकता है ? सारी दुनियाँ इन तीनों दुखों से परेशान है। एक एक वग़ैरह सब को खा रहे है। सब मौत के मुँह में हैं मगर किसी को भी अपने आधार की फ़िक्र नहीं है। भगवान बुद्ध सच कहते थे। दुनियाँ एक मिथ्या बाज़ार है जहाँ दुःख के सौदे का लेनदेन वग़ैरह होता है। दुनियाँ एक आविशों कुर्रा है जिसमें प्राणी भुनकर जल रहे है। दुनियाँ भवसागर है और जिसमें गृहस्थ जीव रात दिन मुसीबत और दुःख वग़ैरह के गोते खाते रहते है।

आध्यात्म विद्या का सार

खण्ड - 2

(फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें)

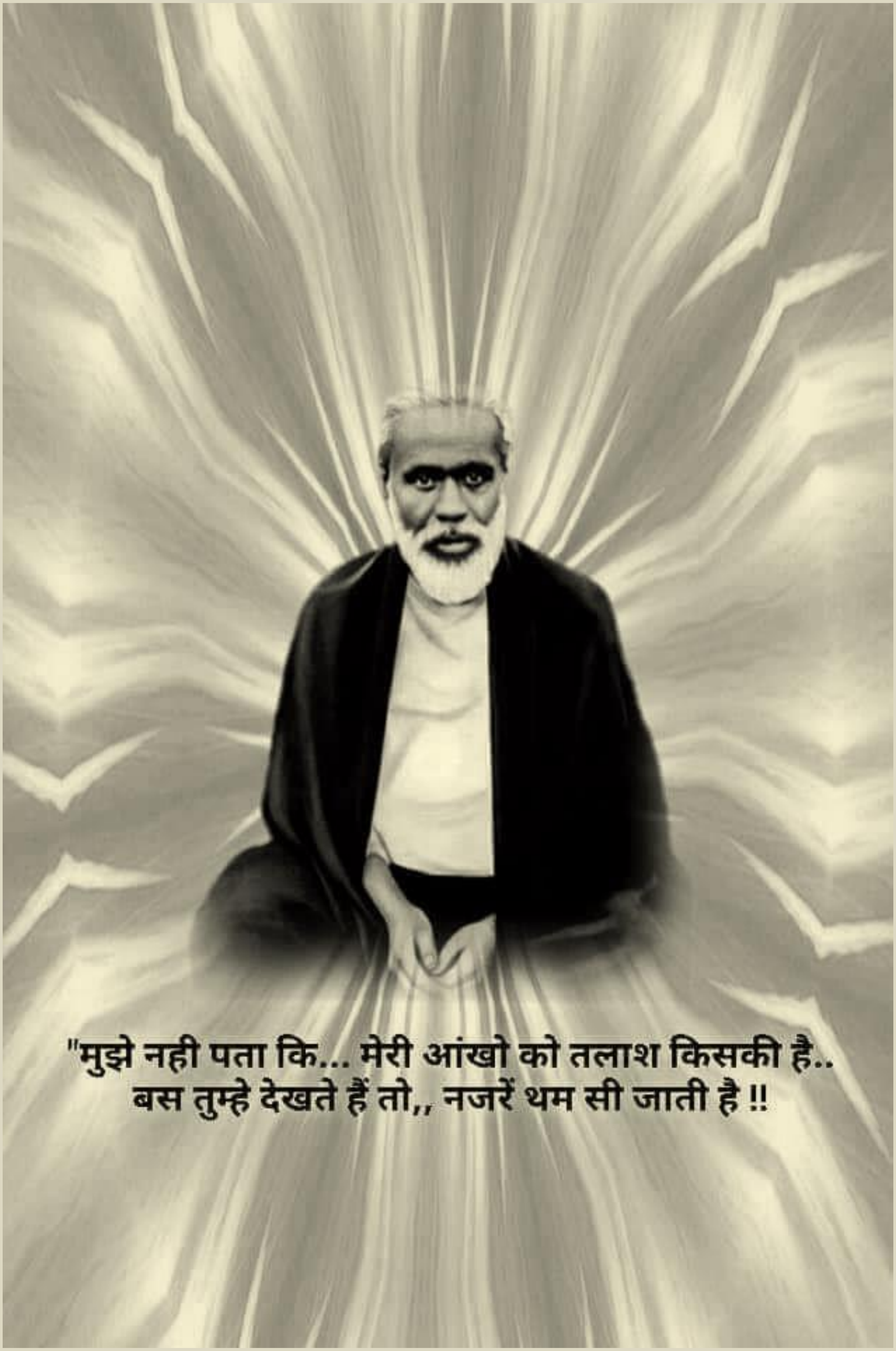

"मुझे नही पता कि... मेरी आंखो को तलाश किसकी है..
बस तुम्हे देखते हैं तो,, नजरें थम सी जाती है !!

अनुक्रमणिका

1। प्रस्तावना

2। प्रथम अभ्यास - फ़क़ीरों की सात मंज़िलें या सन्त सप्त दर्शन

3। द्वितीय अध्याय - सात मंज़िलें - सप्त सोपान

4। तृतीय अध्याय - (1) - संतों के पन्थ के तरीक़े

(2) - इश्क़ (उपासना)

(3) - मार्फत (ज्ञान) व (4) तौहीद

(5) - इस्तगना

(6) - फ़ना (लय)

(7) - बक़ा (पुनर्जीवन)

प्रस्तावना

संतवर **डॉक्टर कृष्ण स्वरुप साहब**, जयपुरी परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज, फतेहगढ़ी के छोटे भाई थेआपने महात्मा जी की सेवा में रहकर ब्रह्मविद्या की पूर्ण दक्षता प्राप्त की और उनकी आज्ञानुसार जीवन भर राजस्थान में ब्रह्मविद्या का प्रचार करते रहे। देहावसान के कुछ मास पूर्व जब मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ, तब उन्होंने मुझे यह पुस्तक दी ताकि मैं उसे पढ़कर जो त्रुटियाँ उसके लिखने में रह गयी हों, उन्हें दूर करके व आवश्यक सुधार करने के पश्चात उसे प्रकाशित करा दूँ। मुझे हार्दिक खेद है कि यह कार्य उनके जीवनकाल में पूर्ण न हो सका। अब यह पुस्तक त्रुटियाँ दूर करके और आवश्यक सुधार के पश्चात् सत्संगी भाइयों की भलाई के लिए आपके सामने प्रस्तुत की जा रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने फ़ारसी मिश्रित उर्दू भाषा का ही प्रयोग इस पुस्तक में किया है। वर्तमान हिन्दी- युग के पाठकों को इस पर सम्भवतः आपत्ति हो, परन्तु जहाँ तक सम्भव हो सका है भाषा को सरल बनाने का प्रयास किया गया है और कठिन शब्दों का अर्थ उनके पास ही कोष्टकों में दे दिया गया है। आशा है इतने से बहुत कुछ काम चल जायेगा और मतलब अच्छी तरह समझ में आ जायगा। सारी भाषा को ठेठ हिंदी में परिवर्तन कर देना तो सारी पुस्तक को ही बदल देना होगा, और ऐसा करने से लेखक के जो मौलिक उदगार हैं वे नष्ट -प्राय हो जायेंगे।

यह पुस्तक एक अनमोल रत्न है जिसमें एक उच्च कोटि के संत के आध्यात्मिक जीवन के गूढ़ और आत्मिक अनुभव खोल खोल कर रखे गए है। आशा है कि पाठक, विशेषकर सत्संगी भाई, इसे ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे और अपने जीवन में उतारने की चेष्टा कर लाभान्वित होंगे।

ग़ाज़ियाबाद : 6 जून १९५९।

-- श्रीकृष्णलाल

.

फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें (संत- सप्त -दर्शन)

अध्याय - प्रथम

आसमान में हर तरह की आवाज़ें सूक्ष्म और स्थूल भरी हुई हैं, मगर उन सूक्ष्म आवाज़ों को सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कानों के पर्दों को लतीफ़ (सूक्ष्म) बनाकर उस दर्ज़े की आवाज़ों के साथ मिला लिया हो जिस दर्ज़े की आवाज़ें हो रही हैं.

हमारे बाहरी कान किसी एक प्रकार के परमाणुओं के बने हैं. बाहरी आवाज़ जो सुनाई दे जाती है वह उन्हीं मसालों की होती है जिनसे बाहरी कान के परमाणु बने होते हैं. इसलिए बाहरी कानों से हम बाहरी आवाज़ों को ही सुन सकते हैं और अन्दर के कानों से अन्दर की आवाज़ों को. ब्रह्माण्ड में और हमारे अन्दर अनेक प्रकार के शब्द हो रहे हैं लेकिन हम केवल उन्हीं शब्दों को बाहर और अन्दर सुन सकते हैं जिनसे हमारे बाहर और अन्दर के कानों की मुताबिक़त (समानता) होती है. बाक़ी और दूसरी आवाज़ें जो और भी अधिक सूक्ष्म हैं, हम नहीं सुन सकते. यही हाल आँखों के विषय में भी है. हमारी आँख उसी प्रकाश का ज्ञान हासिल कर सकती है जो उसी मसाले से बना है जिससे हमारी आँख बनी है, वर्ना नहीं.

सब ही प्राणी किसी न किसी शक्ल में ज़बान से अपने ख़्यालात ज़ाहिर करते हैं मगर उनको सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कान की ताक़त को उस शब्द के मुताबिक बना लिया है, जो ज़बान से निकल रही है. इन्सान इन्सान की बात सुनता है क्योंकि इनमें हम-जिन्सियत (एक जैसे हैसियत) है. चींटी से चींटी मुँह मिलाकर बात करती है क्योंकि उनमें यकसानियत (समानता) है. आवाज़ सिर्फ़ वही सुनी जा सकती है जिसके लिये कानों में क़बूलियत का माद्दा (ग्रहण शक्ति) हो, फिर चाहे आवाज़ मोटी हो या बारीक. इसी तरह रौशनी की कमी या ज़्यादती दोनों आँखों के लिये बेकार हैं. नज़र सिर्फ़ वही चीज़ आ सकती है जिसको आँख क़बूल करे. इसी तरह हमारी नाक और ज़बान का हाल है.

दुनियाँ में सब कुछ है लेकिन जैसा जिसका ज़र्फ़ (अधिकार) है, उसको उतना ही मिल सकता है, ज़्यादा कैसे नसीब हो ? और जो मिलने वाला है वह मिलकर रहेगा, इसमें ज़रा भी शक नहीं है.

मक़सूम, मुक़द्दर और क़िस्मत का साफ़ और दूसरा नाम ज़र्फ़ (काबिलियत, योग्यता या अधिकार) है. यही नसीब है, नसीब के और कोई मायने फ़िज़ूल हैं. जिसके जिसमानी (शारीरिक) दिली, अक़लीऔर

दिमाग़ी आज़ा (इन्द्रियों) ने जहाँ तक अपनी तकमील (पूर्णता) कर ली है, बस उसको उतना ही इल्म होगा और वहीं तक समझ होगी. अगर किसी को इससे इंकार है तो हमको लड़ाई करने की ज़रूरत नहीं है. यह मालूम हो जाये कि किसको कितना हौसला है और कहाँ तक उसको पाने, लेने, देने और ख़ुद फ़ायदा उठाने का और दूसरों को फ़ायदा पहुँचाने का हक़ है. यही सबब (कारण) है कि हम बहस मुबाहिसा (तर्क-वितर्क) वगैरा से भागते रहते हैं. आईना देखने को आँख की ज़रूरत है. अन्धों को आईना दिखाना ग़लती है. वह क्या ख़ाक समझेगा ?

हम जानते हैं कि रौशनी और आवाज़ की दुनियाँ में ख़ास हैसियत है. नादान कहता है 'कुछ भी नहीं' . बहुत अच्छा, कुछ भी नहीं सही. यह भी सच्चा, हम भी सच्चे क्योंकि सच्चाई सिर्फ़ निस्बती (सापेक्ष - relative) होती है और निस्बत के दर्ज़े होते हैं. उल्लू को सूर्य नजर नहीं आता, चिमगादड़ को रौशनी दिखाई नहीं देती तो इनको बताने से क्या फ़ायदा ?

योगिराज भृतहरि जी कह गये हैं कि इन्सानी क़िस्मत एक छोटी लुटिया के बराबर है. चाहे उसको तालाब में डालो या समुद्र में, पानी उसमें उतना ही आवेगा जितनी बर्तन की ज़रफ़ियत (घनत्व) है. इसी तरह से आस्तिक और नास्तिक दोनों अपनी जगह पर सच्चे हैं. जो नहीं देखता वह कैसे किसी ख़ास हस्ती का कायल हो. जो देखता है उसको क्या हक़ है कि न देखने वालों के साथ लड़ाई करे ? हाँ, जब तक देखने और दिखाने की लियाक़त से ख़ाली है तब तक उसका कहना-सुनना बेसुद है.

इसका मतलब है कि क़ुदरत में हर जगह क़ाबिलियत (योग्यता) अधिकार व संस्कार का सवाल रहता है.
वगैर अधिकार और संस्कार के कुछ नहीं मिलता और यही अधिकार और संस्कार परमात्मा के असली
हुक़्म पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है -

बेवक़्त किसी को भला कुछ मिला है ?

पत्ता वगैर हुक़्म के कोई नहीं हिला है .

इसलिए जो इल्म इरफ़ान (ज्ञान) से बाख़बर हैं, उनको सिर्फ़ अपने काम पर लगे रहना चाहिए. और दूसरों की रूहानी तकमील (पूर्णता) वक़्त के हवाले कर देनी चाहिए. 'क़ब्ल-अज़-मर्ग-बावेला' (मरने से पहले ही शोर मचाना) फ़िज़ूल है. हम धीरे-धीरे अपनी ज़िन्दगी के मरहलों (समस्याओं) को तय करते चले जा रहे हैं. जो हालत आज है वह कल नहीं थी और जो कल होगी वह आज नहीं है. हम सब लोग तबदीली की हालत में रहते हैं. जब यह अच्छी तरह समझ लिया कि हालतें बदलती रहती हैं तो फिर किसी से क्यों उलझना चाहिए. फिर क्यों न इन्सान सबके साथ मिलजुल कर अपने काम करें. ख़ैरियत भी इसी

बात में है कि सिर्फ़ अपनी तरफ़ नज़र रहे और जीवन के व्यावहारिक रूप का ज्ञान रखते हुए अपनी ज़ाती (निजी) भलाई का ख़्याल हो -

जन्म -मरण दुख यादकर, कूड़े-काम निवार.
जिन-जिन पन्थों चालना, सोई पन्थ सवाँर !
अपनी ओर निहारिये, औरों से क्या काम,
सकल देवता छोड़कर, भजिये गुरु का नाम.

राम सन्देश में प्रकाशित - आध्यात्म विधा का सार लेख श्रंखला (2)

सात मन्ज़िलें - सप्त सोपान

मज़हब फ़ुक़रा (संत-मत) के सात दर्जे है। जिनका इन अक़ीदों से तालुक़ है वे अच्छी तरह समझ लें कि सालिकों (पन्थाइयों या साधकों) को तरीक़ (पंथ) में दाख़िल होकर इनसे गुज़रना होता है, जिसके लिए पन्थाई को तैयार रहना चाहिए। यह बात इसलिए कही जाती है कि भोले-भाले आदमी अक्सर ग़लती से किसी एक मरहले (समस्या) में अटक कर नाहक़ अपना नुकसान कर बैठते है। कोई मजज़ूब (अवधूत) हो जाता है, कोई मस्त बन जाता है और इसी मजज़ूबियत और मस्ती को ही सब कुछ समझता हुआ उसी का हो रहता है। अगर यह हालतें उसकी अहलियत (अधिकार) के मुताबिक़ हैं तो कोई एतराज़ नहीं लेकिन अगर वह ग़लती का शिकार हुआ जाता है तो -

अगर बीनम कि नाबीना व चाह हस्त

अगर ख़ामोश बेनशीनम गुनाह हस्त

अर्थ : अगर देखने में आवे कि आदमी अँधा है और सामने कुआँ है तो ऐसी हालत में चुप होकर बैठना गुनाह है।

मजज़ूबियत व मस्ती सालिकों के नज़दीक अच्छी हालतें नहीं समझी जातीं है। मज़जूब के मानी है खिंचा हुआ। उसने किसी एक जगह की रौशनी को देखा, और हैरत में आकर बेखुद हो गया और उसी में ठहर गया। उस ग़रीब को आगे का पता नहीं मिला। तरक़्क़ी रुक गयी। ये हालतें बेसूद समझी जातीं हैं। दुनियाँ अगर इनकी इज़्ज़त करती है तो करने दो। इनको अपने मैराजे तमन्ना (चाहत का केंद्र) न बनाओ बल्कि समझ बूझकर किसी आंतरिक अभ्यासी की मदद से जानकारी प्राप्त करके पहले से ही हर बात को समझो , ताकि अगर यह हालतें पैदा हो जावें तो उनसे ऊपर उठकर अपना काम बना सको। मौज़ूदा वक़्त की क़द्र करो। यह आदर्श होना चाहिए। क्या ख़बर दूसरे जन्म में क्या हो ?

जन्म का मतलब यह नहीं है कि इन्सान यह जन्म छोड़कर दूसरा जन्म ले। हमारा शरीर छोटे-छोटे परमाणुओं (cells) का बना होता है। शरीर के परमाणु हर २४ घंटे बाद बदलते रहते है। पुराने परमाणु ज़ाया (नष्ट) हो जाते हैं, और नए बन जाते है। जिस्म की तबदीली इसी एक जन्म में भी मुमकिन है। हर तीसरे, सांतवे या चौदहवें वर्ष इन्सानी जिस्म के सारे ज़र्रात (सेल्स) व गोश्त वगैरह

बदल जाते है। आज के लड़के कल के जवान, परसों अधेड़ और अतरसों बूढ़े हो गए। कहो क्या यह नए-नए जन्म हुए या नहीं ?

जन्म नाम है तब्दीली का। एक हालत जाती है, दूसरी आती है। जब तक मुसाफ़िर मन्ज़िले-मक़सूद तक नहीं पहुँचता तब तक रात के नज़्ज़ारे, बियाबान जंगल और पहाड़ों के तमाशे आँखों के सामने आते रहते हैं मगर आख़िरी मन्ज़िल पर पहुँचकर मेराजे-तमन्ना (इच्छित लक्ष्य) से मिल गया फिर ये सारे झगड़े नज़र से ओझल ही हो जाते है।

इस लिए कहा गया है कि मजज़ूबियत व मस्ती को हाथ न लगाओ, यह बीच की हालतें है। इनमें जो फँसा वह मारा गया। आगे क्या होगा न हम जानते हैं न हमारे फ़रिश्ते। सत्यपुरुष की वाणी है :

एक जन्म गुरु-भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम,

जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।

इन मन्ज़िलों (दशाओं) के हासिल करने के लिए सालिकों (पन्थाइयों) को सात हालतों (अवस्थाओं) में से गुज़रना पड़ता है जिसको मज़हब फुकरा (संतमत) का ' हफ़्त-ख़्वान ' कहते हैं जिसके माने हैं ' सात दस्तर-ख़्वान' जिनसे सालिकों (पन्थाइयों) को अक्सर गुज़रना पड़ता है। ये कड़े भी हैं और सरल भी। सारी बात इन्सान के हौसले और शौक़ पर मुनहसिर (निर्भर) है। खुशमिज़ाज़ अपने काम को तफ़रीह और दिलबस्तगी (मन बहलाव) का सबब बना लेते हैं और चिड़चिड़ा आदमी उसी को जान की बला बना लेता है। किसी ने सीधी और सरल जुबान में बयान किया है, किसी ने इशारों की मदद को काम में लिया है और किसी ने और किसी तरह पर ज़ाहिर किया है। यह अपनी-अपनी चाहत और पसन्द की बात है। हम सहल पसन्द करने वाले आदमी है।

सख़्त व मुश्किल शब्दों का हमारा उसूल नहीं रहा और इसी सबब से जो हमारी सुनते हैं और हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं उनको मामूली ज़बान में बता देते है। हम हमेशा यही सलाह देंगे कि सहल और आसान बातों को अपना रहबर (मार्गदर्शक) बनाया जावे, क्योकि सख़्त और मुश्किल बातों से दिल उलझन में फंस जाता है।

ये सात मंज़िले (सोपान) यह हैं :- (1) तलब (जिज्ञासा) (2) इश्क़ (उपासना) (3) मारफ़त (ज्ञान) (4) तौहीद (अनेक से एक पर आना) (5) इस्तगबा (उपराम होना) (6) फ़ना (लय) (7) बक़ा (पुनर्जीविन)

(1) **तलब** - तलब कहते हैं इच्छा, जिज्ञासा, आरजू और ख़्वाहिश को।

(2) **इश्क़** - इश्क़ कहते हैं ख़्वाहिश के घनेपन की हालत को जिसको कि आम लोग मौहब्बत, भक्ति, प्रेम, उपासना वग़ैरा कहते है। इन दोनों की शुरुआत ख्याल से है। ख्याल की गहराई हुई ख़्वाहिश का ही दूसरा नाम इश्क़ है।

(3) **मारफ़त** - (ज्ञान और पहिचान)- जब ख्याल पैदा हुआ और घना होने लगा तो उसकी हालत आपसे आप समझ में आने लगती है और आदमी उसको जानने पहिचानने और उसकी तशरीह (व्याख्या) करने के क़ाबिल हो जाता है। इसी का नाम ज्ञान या मारफ़त है। पहली हालत ध्यान की थी। वही ध्यान घना होने पर इश्क़ कहलाया और इश्क़ के होने पर चीज़ की पहिचान होने लगी। इसी को ज्ञान या मारफ़त कहते है। तीन हालतें खत्म हो गयी।

(4) **तौहीद** - (एकभाव) यह और कुछ नहीं है सिर्फ़ ख़्वाहिश की निहायत घनी सूरत ही है। जब ख्याल में उभार हुआ और उसको ध्यान व ज्ञान से तरक़्क़ी व ताक़त मिलने लगी तो वही तौहीद हो गयी। यह वेदान्तियों का दर्ज़ा है। यहाँ पहुँचकर बाज़ बाज़ लोग दिल के जज़्बे (भाव) को ज़ब्त करने की ताक़त न रखते हुए 'अनहलहक़ ' या अहंब्रह्म ' की आवाज़ सुनाने लगते है। यह हालत बीच की है। यही सब कुछ नहीं है और न हो सकती है। माना कि यह दर्ज़ा ऊंचा है, इस दर्ज़े तक पहुँचने का काम भी कठिन है, मगर यह मन्ज़िल (अवस्था या आयाम) आखिरी नहीं है, न हो सकती है, न होगी।

वेदांती कहता है कि - " ***एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति*** " (ब्रह्म एक है, दो नहीं) और वह बड़े ग़रूरऔर घमण्ड के साथ दलील देता है कि अब इसके आगे क्या रहा है ? सोचने की बात है कि 'एक ' सिर्फ निस्बती लफ्ज़ (अपेक्षित या relative term) है। एक के पेट में ही अनेक रहते है। जहाँ वहदत (एकता) होगी वहाँ वहदत के पेट ही में कसरत (अनेकता) रहेगी। अगर कसरत न होती तो वहदत का ख़्याल कैसे पैदा होता ? बात साफ़ है, लगाव लपेट का काम नही। समझने वाले समझ लें, जो न समझे न सही।

दूसरा कहता है " ***ला इलाह इललीलाह*** " (कुछ नहीं है सिवाय परमात्मा के)। इनका भी यही हाल है। दोनों अधर में लटके हुए हैं और ख्याली झूले में पेंग मार रहे हैं, मगर दिल्ली अभी दूर है। यह

जगह मजजूबियत (अवधूतपन) और खतरे की है। यहाँ भी माद्दा (प्रकृति) है, नहीं तो कौन कहता और कौन अनेक की आवाज़ लगाता। 'जनहलहक़' और 'अहंब्रह्म' को 'अना' (नहीं हूँ) और 'अहं' (मैं) से साफ़ करना अभी बाक़ी है। जब सिर्फ 'हक़' रह जायेगा तब देखा जायेगा।

पहुँचेगे तब कहेंगे, पहले कहा न जाय

भीड़ पने मन मसखरा, लड़े बिधौं भंग जाय

इस मुक़ाम पर पहुँचने वालों की खैरियत नहीं है। हम उनकी ताज़ीम (सराहना) करते हैं, उनके नाम और ज़ज़बात (भावनाओं) की हमारे दिल में इज़्ज़त है। ख़ैर यह दर्ज़ा भी आ गया मगर इसमें टिकाब नहीं है, फिसल पड़ने का डर है। क्योकि माद्दा साथ है। इन्सान कभी एक का होकर नहीं रहना चाहता। उसकी तबियत ताज़गी पसन्द है।

(5) **इस्तगना -** उपरामता) जब एकपना व 'एकोभाव' से जी भर गया तब उससे तबियत ऊब गई। अब एक हो या अनेक - इन दोनों में से किसी से कुछ लेना देना नहीं। बात समझ में आ गई। अब न रग़बत (लगाव) है और न नफ़रत। इसी को इस्तगना कहते है। इसी इस्तगना को उदासीनता (उपराम होना) कहते है।

(6) **फ़ना** (लय) - इस्तगना की हालत जब पुख्ता हो गई उसी को फ़ना कहते है। फ़ना के मायने 'मर जाना' या 'मादूम' (नष्ट) होना नहीं है। क़ुदरत में कोई चीज़ मादूम नहीं होती और न हो सकती है। मादूम होना एक ऐसी हालत है जिसमें ज़ाहिर होने की तमन्ना (इच्छा) नहीं रहती। यही मन्ज़िले-मकसूद (लक्ष्य) है।

(7) **बक़ा** - (पुनर्जीवन) जब तक फ़ना व उसकी हालत नसीब (अवस्था की प्राप्ति) नहीं होती तब तक बक़ा व सत्य का मिलना बड़ा मुश्किल (कठिन) है।

न फ़नाये खुद मयस्सर नेस्त दीदारे ख़ुदा

मी फ़रिशद खेशरा अव्वल ख़रीदारे ख़ुदा

अर्थ - जब तक ख़ुद फ़ना नहीं होता, ख़ुदा नहीं मिलता। ख़ुदा को खरीदने वाला पहले ख़ुद को बेचता है।

अब भी अगर समझ में नहीं आया तो ऊपर की इबादत को कई दफ़ा पढ़ो। ग़ौर से पढ़ने से समझ में आ जायेगा।

मज़हबी मुनादी करने वालों से अगर कोई बात पूछी जाये तो वे ऐसी भाषा बोलेंगे जिससे सुनने वाले की अक़्ल भरमा जाय, और वे सुनकर कुछ न कह सकें। ऐसा करने का मतलब होता है कि सुनने वाला उनको बहुत बड़ा और ज्ञानी समझे। उनमें अपनी गाँठ की अक़्ल नाम मात्र की भी नहीं होती।

राम सन्देश में प्रकाशित - आध्यात्म विद्या का सार लेख श्रंखला (3)

(1) संतों के पन्थ के तरीक़े

देखो साहबो ! यह सात मन्ज़िल की सैर भी अपने आप होती रहती है। असल में कुछ करना-धरना नहीं है। जो है वह है। मगर यह बात आम और मामूली आदमियों के लिए नहीं कही गयी है। उनको तो कुछ न कुछ करना-धरना ही है और करना चाहिए। मगर जिनको भेद समझने की ताक़त है और वे जानते हैं कि सब कुछ अपने आप से हो रहा है, हाँ, शुरू दर्ज़े वालों को तो काम करना ही है। वह भी उसी उसूल के मुआफ़िक होगा और हो रहा है जिनको इशारों में कुछ ऊपर बयान कर दिया है।

दादु दयाल साहब कहते हैं :--

नहीं जहां से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय

दादु ऐसा सोचकर, तू मत धोखा खाय

नाहीं वहां से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय

दादु नाहीं हो रहो, साहब से लौं लाय

उपजे बिनसे गुण धरैं , हाय माया का रूप

दादु देखत थिर नहीं, छिन छाया छिन धूप

दादु दावा दुर कर, फिर दावा दिन काट

केते सौँदा कर गए, पंसारी की हाट

दादु दावा आदि की, नीर दावा कैसा

दिल का दुश्मन दुर कर, सौँदा कर ऐसा

जीवन भारी हो रहो , साईं सन्मुख होय

दादु पहले मर रहो, पीछे मरे सब कोय।

अब सन्तों के पंथ के तरीक़ों के इशारे सुनो। (1) तीसरा तिल = तलब (2) सहस्त्रदल कंवल = इश्क़ (3) त्रिकुटी = मारफ़त (4) सुन्न = तौहीद (5) महासुन्न = इस्तगना (6) भंवर गुफ़ा = फ़ना(7) सतलोक = बक़ा

॥ **तलब** - तलब हमेशा दिल की ताक़त से पैदा होती है। वही इश्क़ मारफ़त, तौहीद, इस्तगना, फ़ना में तब्दील होकर बक़ा हो जाती है। बक़ा तो अब भी है। लेकिन ख़्याली पर्दों ने ढक रखा है। अमल और शग़ल इन्हीं पर्दों को हटाने का नाम है। जब ये पर्दे हट जाते हैं तब बेनाशवान रौशनी नज़र आने लगती है। रौशनी तो अब भी है, उसमें फ़र्क़ कहाँ? मगर जैसे आँखों पर ऊँगली रख लेने से चाँद दो, तीन, चार दिखाई देने लगते हैं या अगर ऊँगली आँखों के बिलकुल सामने आ गयी तो चाँद बिलकुल ग़ायब मालूम होने लगता है। इसी तरह उसकी भी हालत है। हालात, बसवसात (वहम) खादशात (शकशुबहा) और ख़तरात (विवेक के दौरान जो विघ्न आते हैं) बीच में पर्दे होकर आ जाते है। यह असल में ख़्याली ही है। मगर ख़्याल जिस तरह पैदा हो गया है उसी तरह हटाना भी है। और वह इसी तरह हटता भी है। हटेगा, और ज़रूर हट कर रहेगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। इस पर विश्वास रखना चाहिए और काम ख़ुद बख़ुद बनता चलेगा।

कोई कोई साहब दरियाफ़्त करते हैं कि सालिकों (पन्थाइयों) से चलने और चढ़ने को कहा जाता है। एक मुक़ाम से दूसरे मुक़ाम पर चलना और चढ़ना होता है। इसका क्या मतलब ? गो इसका जबाब पहले आ चुका है मगर फिर भी कहे देता हूँ कि चलना और चढ़ना हरकत है। ख़्याल की हरकत ने तारीकी (अंधकार) पैदा की। अब ख़्याल ही के हटाने से तारीकी दूर होगी। ऊँगली आँख पर आगयी, चाँद गायब हो गया। अब तो वह ऊँगली हटाने पर ही नज़र आएगा। यही चलने और चढ़ने का मतलब है, बाक़ी और कुछ नही। जिन रास्तों से होकर सुरत नीचे उतर आयी अब उन्हीं रास्तों पर चलकर चढ़ने से मन्ज़िल पर पहुँचेगी। अगर मर्ज़ी हो या समझ में न आयी हो तो और ज़्यादा साफ़ कहा जाय। सुनो ! यह दुनियाँ मिसाल की जगह है। मिसाल से बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है, और अगर नज़र चारों तरफ जाती है तो दुईते (दो विचारों वाले) को क्या मिला है जो अब मिलेगा। मसल मशहूर है :

' दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम "

ग़ौर से सुनो ! एक बच्चा है जो अपनी माता के पेट से बाहर आया है, उसको ग़िज़ा की ज़रूरत है। मुँह खोलता है, अंगड़ाई लेता है, माता झट अपनी छाती से लगा लेती है। यह 'तलब' है। जब तलब में ताक़त आयी, वह रोता है, शोर मचाता है, माता उसके ज़ज़्बात (भावनाओं) को जानती है और ताज़ीम (आदर) करती है, यह ' इश्क़ ' है। रोना, पीटना, शोर करना, इश्क़ की अलामत (लक्षण) है।

कबीर साहब कहते हैं :

कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीत,
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय
हंसी ख़ुशी से जो हरि मिलें, तौ कौन दुहागिन होय
सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे

बच्चे में अभी इश्क़ है, वह नहीं जानता कि उसको ग़िज़ा (भोजन) कौन देता है। इश्क़ ने हाथ पाँव मारना शुरू किया। वह माता को पहिचानने लगा। यह ' मारफत ' और 'ज्ञान ' है।

जब वह माता को पहिचानने लगा तब उसको ताक़त ज़्यादा मिली। अब वह सब औरतों के बीच में अपनी माता को पहिचान लेता है, और उसकी गोद में ख़ुशी तलाश करता है। जब उसका यह ज्ञान पुख़्ता हो जाता है तब ' तौहीद ' का दर्ज़ा आ जाता है। माता और बच्चा मिलकर एक हो जाते है। इससे पहले वह शायद किसी दूसरे के पास तो रहता हो मगर उसकी नींद जब खुलेगी माता की याद आवेगी और उसको सिर्फ़ माता के पास चैन मिलेगा। क्योकि चैन जब ही मिलता है जब दो मिलकर एक हो जाते है। इस तरह माँ और बच्चे की वहदानियत को देखकर प्रेम का सबक़ सीखना चाहिए। वह उसी से ज़िद करता है, कपड़े फाड़ देता है, गाली दे बैठता है, गुस्सा भी हो जाता है। माँ भी उसे खूब पीटती है। फिर भी भला कोई कोशिश करके उसको माँ की गोद से हटा तो ले तो मैं मर्द समझूँ। सब कुछ हो जाय मगर वह माँ का है और माँ उसकी है। दोनों इस बात को बिना समझाये समझते है। तौहीद समझने और समझाने का मज़मून नहीं है। यह दिल का जज़बा (भाव) होता है। इसमें असलियत है, जिसकी तस्बीर कोई फ़ोटोग्राफर नहीं खींच सकता न कोई कवि ख़्याल में ला सकता है। बच्चा माँ का

गोश्त व पोस्त है। पैदायश की जड़ और असल है। यह इल्म किसी किताब या उपदेश से नहीं लिया गया है।

बच्चा कितना ही मैला क्यों न हो और माँ कितने ही साफ़ कपड़े क्यों न पहने हो बच्चे को कीचड़ में देखकर माँ उसको तुरन्त गोद में उठा लेगी। शेर या भेड़िया आया या और कोई डरावनी सूरत नज़र आयी, बच्चा कहाँ जायेगा ? माँ की गोद की तरफ भागेगा। कोई कितना ही समझाये कि माँ में बचाने की ताक़त नहीं है, मगर वह कब किसी की सुनेगा, वह सबसे ज़्यादा अक्लमंद है, वह जब झुकेगा अपनी असल की तरफ झुक

जब इश्क़ ज़ोर पर आता है और मारफ़त हो जाती है तौहीद (अनेक से एक पर आना) आप से आप भागी आती है। बुलाने की ज़रूरत नहीं होती।

दिल की अंगीठी में इश्क़ की आग भड़क रही है, जिसकी गरज़ हो आकर बुझाये। जलता है जल जायेगा उसको क्या परवाह है, मगर नहीं :-

आग जलती देखकर, साईं आये धाय
प्रेम बूँद छिड़ककर, जलती लई बुझाय

बच्चा जब रोता है तो माँ हज़ार काम छोड़कर चली आती है। इसी तरह तलब, इश्क़ और मारफ़त के पैदा होते ही तौहीद (एकभाव) आ जाती है और तालिब (तलाश करने वाला) व मतलूब (जिसकी तलाश की जाती है) दोनों मिलकर एक हो जाते है। जब तौहीद पुख्ता हो जाती है तो 'इस्तगना' (उपराम) आ जाती है। एक हालत कभी नहीं रहती। बच्चा बेपरवाह हो गया, माँ को पहिचान लिया। उससे मिलकर एक हो गया, अब वह खेलता फिरता है। माँ बुलाती है, वह खिल-खिलाकर हँसता है और आगे दौड़ जाता है। दोनों में खेल हो रहा है। कौनसा खेल ? तौहीद का खेल। कोई नादान यह न कहे कि माँ और बच्चा दो नज़र आते है। अगर ऐसा कहे तो समझलो कि उसकी आँखों में बीमारी है जिससे एक चीज़ दो दिखाई देती है।

बच्चा बढ़ा और बढ़ कर अपने आप में महब (गुम) हो रहा। यही फ़ना है। तौहीद की मन्ज़िल से वह ऊपर आ गया, ख़ुदी में बेखुदी है। कुछ दिनों यह हालत रही, फिर बक़ा (पुनर्जीवन) है। अब उसको पीछे की मन्ज़िल से कोई सरोकार नहीं रहा।

एक मामूली टूटी फूटी मिसाल से असलियत समझाने की कोशिश की गयी। अगर समझ में आ गयी तो ऐन ख़ुशी की बात है अगर नहीं समझ पाया तो जाने दो। अभी बुलन्द नज़री नहीं आयी। फिर कभी देखा जायेगा।

एक साहब तसव्वुफ़ पसन्द (सूफी मज़हब पसन्द करने वाले) ऊपर के मज़बून को सुनकर बोले कि - " यह सब सच हो मगर आप हमेशा ' गुरु गुरु ' क्यों किया करते हैं, यह सात मंज़िलें तय करने में तो गुरु की ज़रूरत ही नहीं होती।

वाह ! भाई वाह !! यह तो वही मसल हुई जैसे कोई कहे कि बच्चे को माँ की ज़रूरत नहीं, तालिब (विद्यार्थी) को उस्ताद (शिक्षक) की ज़रूरत नही। मौज़ूदा हालत में यह मुश्किल बात है।

वगैर गुरु की मदद के रूहानियत (आध्यात्म विद्या) को प्राप्त करना आसान काम नहीं है। माँ अगर न हो तो बच्चे का इश्क़ पुख्ता (पक्का) कैसे हो ? उस्ताद अगर न हो तो तालिबइल्म (विद्यार्थी) में पुख्तगी (परिपक्वता) कैसे आवे? इसी तरह अगर रूहानियत (आध्यात्म) का गुरु न हो तो इल्म रूहानियत (आध्यात्म विद्या) कैसे नसीब हो ? यहाँ तो क़दम-क़दम पर सहारा लेने की ज़रूरत है। मगर ख़ैर कौन ज़्यादा उलझे। सुनो फिर वही बात दुहरायी जाती है। तालिब (जिज्ञासु) में रूहानियत (आध्यात्म) की तलब पैदा हुई, वह गुरु की ख़िदमत में गया और बच्चों की तरह उनके कलाम (वचनों) में से रूहानी ग़िज़ा (आत्मिक आहार) पाने लगा और उससे पलने लगा। मुहब्बत से गुरु का प्रेम पैदा हुआ। प्रेम से उसके असली रूप की पहिचान आयी और इस पहिचान से गुरु की ज़ात के साथ यकसू (एकता) होने का मौक़ा हाथ आया। कबीर साहब फरमाते हैं :-

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नायँ

प्रेम गली अति सांकरी , या में दो न समांय ।

अब गुरु-चेला दोनों मिलकर एक हो गए। एक के दिल का असर दूसरे के दिल पर पड़ने लगा। फिर इसके बाद वही उदासीनता या इस्तग़ना वही बक़ा और सत्य लोक के दर्ज़े नसीब हुए।

इतना सुनकर वह साहब बोले, " फिर अलहदगी हो गयी कि नहीं ? बेपरवाही आयी तो गुरु छूट गए।

भाई तौहीद (दो से एकपना) में जुदाई (अलहदगी) कैसी ? पहले गुरु और चेला दो रूप वाले थे अब तो दोनों इस तरह हो गए कि गुरु और चेले तक के भाव का पता नही। इस विषय पर कबीर साहब की वाणी सुनो :

सबाल - गुरु हमारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय
क्यों करके मिलना हुआ, कैसे बिछुड़े जाय

जबाब - गुरु हमारा गगन में, चेला है चित माँय
सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहुँ नाँय

गुरु नाम है आदर्श का जो चेले के दिमाग़ व दिल में सतगुरु की ज़ाहिरी सूरत की मदद से दाख़िल हो जाता है, उससे जुदाई कैसे हो सकती है ? इसी को फ़ना-फ़िल-शेख़ (गुरु में लय होना) कहते हैं।

ज़ेरे अफ़लाक से तहतुस्सरा के गार में आये
उतर कर अर्श से, इस दारे नाहिंजार में आये
न तुम समझो कि हम दुनियां के कारोबार में आये
गरज़ थी इश्क़ के सौदा से , इस बाज़ार में आये
अदम से जानिए हस्ती तलाशे यार में आये
हबिसे गुल में हम इस बादिये पुरख़र में आये

अर्थ :- आकाश से उतर कर इस मृत्यु लोक के गढ्ढे में आये हैं। हम जिस ऊँची हालत को लिए हुए थे या जो हमारा असली रूप था उसको छोड़कर हम इतने नीचे गिरे कि पाशविक वृत्ति में दिखलाई देने लगे। यह मत समझो कि हम इस दुनियाँ के कारोबार में अपने को लगाए हुए हैं। हमारी गरज़ तो सिर्फ प्रेम थी और उसी की तालाश के लिए हम इस दुनियाँ रुपी बाज़ार में आये हैं। हमने उस प्यारे प्रीतम की खोज में शून्य से निकलकर यह आकार धारण किया और फूल की तलाश करते-करते कांटेदार झाड़ियों में आ फँसे।

आने को दुनियाँ में चले तो आये। कैसे आये? यह नहीं जानते। आये हैं, इतना जानते हैं। क्यों आये हैं ? इसको भी कुछ-कुछ जानते हैं, मगर ज़ाहिर करने की ताक़त नहीं है। दिल को किसी चीज़ की ख्वाहिश (चाह) है, उसकी तलाश है और रात-दिन उसी तलाश में हैरान और परेशान रहते हैं। जिस तरह समुन्द्र में लहरें कभी आसमान की तरफ जाती हैं, कभी किनारे से टकराती हैं, इसी तरह की उठक

बैठक में हम भी पड़े रहते है। जिस तरह दरिया में ग़ोता लगाने वाला कभी नीचे कभी ऊपर जाता है , हम भी दुनियाँ के दरिया में ग़ोताखोर है। तह में घुसते और उभरते रहते है। जब तक मोती हाथ नहीं आता इसी कोशिश में पड़े रहते है। इसी का नाम जन्म-मरण, द्वन्द की अवस्था व संसार है।

बच्चा सँसार में आता है। अगर उस छोटे बच्चे के ज़ज़्बात पर ग़ौर किया जाय तो उसमें तीन बातें मिलेंगी ।

1। - भोग का शैदाई (खाने पीने की ख्वाहिश रखने वाला)

2।- हर चीज़ की माहियत (असलियत) को जानने की ख़्वाहिश

3। - नुमायश (दिखावे) का क़ुदरती शौक़

यह तीन बातें हर बच्चे में मिलेंगी चाहे वह इन्सान की औलाद हो या हैवान की। वह हर चीज़ को माँगता है, हर चीज़ की माहियत (असलियत) का इल्म लेता और अपने आप को दिखाता चलता है। इस भोग-विलास व इल्मी तालाश व खुदनुमायी (अपने को दिखने की इच्छा) की कोई हद नही। जो चीज़ पसन्द की देखता है, उसी को लेना चाहता है। अपने सामने दूसरे की ज़रा भी परवाह नही। एक चीज़ से रगवत (लगाव) कम हुई तो दूसरे की चाह। मगर चाहता है सिर्फ अपने फायदे की चीज़। अगर कोई कड़वी दवा या कड़वी चीज़ दी जाय तो मुंह फेर लेगा। यह ज़ज़्बा सिर्फ़ इन्सानी बच्चों में ही नहीं है बल्कि हैवानों के बच्चे भी इससे ख़ाली नहीं हैं । बल्कि अपनी ग़िज़ा को चुनने में इन्सान से ज़्यादा तमीज़ रखते है। अगर हैवानों की हालत पर गौर किया जाय तो बहुत से सबक़ मिलते है। ना-मरगूब (जो पसन्द न हो) चीज़ की तरफ आँख भी नहीं उठाते, इनको बताने या सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह जानवरों में तो देखते हो मगर बेजान जिन्हें समझा जाता है वे भी इनसे ख़ाली नहीं मिलेंगे। वे भी किसी चीज़ को अपनी तरफ खींचते व दूर करते रहते है। हर चीज़ को बढ़ने, पूरा होने और सबसे मिलकर एक होने का क़ुदरती शौक़ है। इसी क़ुदरती शौक़ का नाम " तलब " है।

यहाँ न कोई जानदार है और न बेजान है। जिसने जैसी अपनी निगाह बना ली उसी निगाह से वह चीज़ों को देखा करता है और हर चीज़ को जुदा -जुदा समझता है। जो चीज़ हमारी हालत के साथ मेल रखती है उसे हम जानदार कहते हैं और ज़ाहिरा हम से मेल नहीं रखती उसको बेजान कहते है। मगर हक़ीक़त (असलियत) क्या है ? यहाँ हरेक ज़र्रा (परिमाणु) हरकत में नज़र आता है। एक परिमाणु को खींचकर दूसरा साथ कर लेता है।

लकड़ी के ज़र्रात(अणुओं) में हरकत है और वे कुछ समय में एक हो जाते है। हर चीज़ की हालत बदला करती है और हमेशा ही यह तबदीली का क़ानून जारी रहता है। इस तबदीली से साफ़ ज़ाहिर होता है कि उनके अन्दर के ज़र्रात (अणु) हरकत में रहा करते हैं और हरकत का होना जानदारी की दलील (प्रमाण) है। मौज़ूदा निगाह की हालत से कोई कुछ ही कह ले, क्या इससे किसी को इनकार है ? हमारे ख्याल से इनकार नहीं होना चाहिए क्योकि ऐसी नज़ीर (मिसाल) हर वक्त देखते, सुनते और महसूस करते रहते है। राग व द्वेष इसी जज़बे तलब के नतीजे है।

मौज़ूदा ज़िन्दगी में जो चीज़ हमारे माफ़िक़ है उससे हम मिलने की ख्वाहिश रखते हैं और जो माफ़िक़ नहीं है उससे अलग रहना चाहते है।

कोई पूछ सकता है कि अगर सबको एकपने का सौदा (खब्त) है तो यह रगवत (लगाव) और नफरत कैसी ? हम जैसे हैं वैसों ही के साथ वैसे ही सामान के साथ हमारी रगवत है और जो चीज़ इस बात से ख़ाली है उसको हम फूटी नज़र से भी देखना नहीं चाहते। हम इस क़ुदरती जज़बे (प्राकृतिक भावना) को तलब कहते है। तलब, तालिब (इच्छुक), मतलूब (जिसकी इच्छा की जाय) - ये तीन ज्ञान के ज़रुरी, लाज़मी (आवश्यक) और पहले ज़ीने (सीढ़ी) है। यह न हों तो हमारा काम नहीं चल सकता। यह मजबून ऐसे हैं जो बहुत समय चाहते है। ज़्यादा उलझनों में डालना मंज़ूर नहीं है। सिर्फ़ समझने को इशारा काफ़ी होता है। बड़े लोगों का कहना है कि " अकलमंदों को इशारा काफ़ी है " । मिसालें बहुत सी दी जा सकती है।

तलब अपना काम करती है। ज़िन्दगी शुरू हो गयी है, उसके अंजाम (अंत) की अभी ख़बर नहीं है। नादान और नातजुरबेकार (अनुभवहीन) लोग फ़क़ीर और संतों के मज़हब (मत) का मज़ाक़ उड़ाते हैं, वे नहीं जानते कि उनकी तालीम (शिक्षा) सब की चोटी पर है।

चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी तरफ खींचता है। इसी प्रकार हमारी चुम्बक इस दुनियाँ और इस संसार रुपी लोहे को अपनी तरफ़ खींचती रहती है। इस खींचने में कशमकश (खींचातान) है और कशमकश दुख का तमाशा है जिसमें ज्ञान हमको समझाता रहता है कि जिस चीज़ की ज़रूरत है हम उसी से ताल्लुक़ पैदा करें। बाक़ी दूसरी चीज़ों को नज़र से हटाते जायें। इसी से हमारा काम बनेगा।

यही ज्ञान हक़ीक़त (वास्तव) में हमारी अमल (अभ्यास) और शग़ल (अभ्यास) कॉलोफैल (वाणी और कर्म) जप, तप, आदि की कमाई का तजुरबा है। यही हिदायत करता रहता है कि 'नेक बनो' हिल्म (आधीनता) और इनकसारी (दीनता) सीखो। सब से मौहब्बत करो, ओट ग़रुर (अहंकार) को

छोड़ दो क्योकि इन्ही की मदद से कामयाबी हासिल कर सकोगे और अगर गुमराह (पथभ्रष्ट)होते हो तो तुमज जानो। भटकते रहोगे, परेशान रहोगे, पशेमान (दुखी) रहोगे। मुमकिन है इस तरह करने से पहले हमें कुछ दुःख मालूम हो क्योकि आदत को बदलने में दुःख ज़रूर मालूम होता है। मगर जब आदतें दुरुस्त हो जाती हैं, उसी रास्ते को हम सच्चा रहबर (रास्ता बताने वाला) पाते हैं और उसी की कद्र करने लगते हैं और उसी की मदद से ताक़तवर (शक्तिशाली) होकर आगे बढ़ते है। यह तलब की पहली मंज़िल है। शुरू में उसकी शक्ल कैसी ही भद्दी नज़र आवे परन्तु धीरे-धीरे खूबसूरत होती जाती है और शानदार नज़र आती है। संग-तराश (पत्थर का काम करने वाले) को तसबीर बनाने का ख्याल पैदा होता है। यह ख्याल हक़ीक़त में तलब ही है। मुमकिन है वह पहले साफ़ नज़र न आवे और दिल इससे हिचकिचाए, परन्तु धीरे-धीरे जब वह पत्थर पर हथोड़ा मारने लगता है, उसमें नई-नई खूबसूरती पैदा होती है और वह शांत चित्त होकर अपना काम करने लगता है। भद्दे पत्थर में से एक खूबसूरत मूर्ति निकाल कर रख देता है। एक जिज्ञासु गुरु की शरण में जाता है। उनकी नेक आदतों, बुर्दबारी (सहनशीलता), इनकिसारी (आधीनता) प्रेम, शांत चित्त, मीठी बोली और भिन्न-भिन्न आदतों को देखकर उसके दिल में उनसे प्रेम और श्रद्धा पैदा होती है। उस भावना की सहायता से धीरे-धीरे अपनी बुरी आदतों को छोड़ता जाता है और अच्छी आदतों को अपनाता जाता है और कुछ समय में कुछ का कुछ हो जाता है। तातपर्य यह है कि बुरी आदतों को छोड़ना और अच्छी आदतों को ग्रहण करने की भावना होना ही ' तलब' कहलाता है। क्या यही तलब आपको मालिक के चरणों में है ? अगर है तो फ़िक्र न करो। तलब को खूब बढ़ने दो, वह अपना काम किये बिना न रहेगी।

तलब है, दिल कुरेदता रहता है, ख्वाहिश तरक़्क़ी पर है उनकी न तलाश पूरी होती है, न मुराद (मनोवांछना) पूरी होती है, न दिल को इत्मीनान (तसल्ली) होता है :

कबीर साहब कहते हैं -

बिरहन दियो संदेसरा , सुनो हमारी पीव
जल बिन मछली क्यों जिए, पानी में का जीव ।

राम सन्देश में प्रकाशित - आध्यात्म विद्या का सार लेख श्रंखला

(2)इश्क़ (उपासना)

तलब जब पूरी होकर इस कमाल (पूर्णता) को पहुँचती है वही इश्क़ की सूरत में ज़ाहिर होती है। इन्सान के छोटे-छोटे काम बन कर बड़े काम बन जाते है। मामूली और छोटे ख़्यालात सबको मिलाकर ज़बरदस्त ख़्याल बना देती है। इसी तरह से बोलने और तक़रीर (व्याख्यान) करने की आदत आदमी को ख़ुश-तक़रीर (मधुर वक्ता) बना देती है। रोज़ रोज़ की आदत बड़ी आदत में बदल जाती है। इसी से इन्सान की मौजूदा रविश (रहनी) का पता चलता है। इसी तरह तलब और उसकी कुरेद उसके दिल को इश्क़, प्रेम और मुहब्बत का घर बना देती है और वह सच्चा भक्त, सच्चा प्रेमी व सच्चा सेवक हो जाता है। जो कुछ है वह आदत है। आदत ही गिरा देती है और यही आदत उठा देती है। इश्क़ जब दिल में आ गया फिर मुमकिन नहीं कि इन्सान किसी को दुःख दे सके या भला बुरा कह सके।

अब सोचने की बात है, ईश्वर ही प्रेम और मुहब्बत है इसको मामूली दिमाग़ वाला भी जान सकता है। जब जो आदमी ईश्वर को दिल देगा कैसे हो सकता है कि उसमें मुहब्बत के जज़्बात (भावनायें) पैदा न हों ? जो दिल में रहता है वही बाहर असर दिखाता है। दिल के ख़्याल ही हमारे रोज़ाना बर्ताव में अपने ज़ाहिर होने के अजीबोग़रीब (अद्भुत) नज़्ज़ारे (दृश्य) रोज़-रोज़ दिखाया करते है। अब इस मौक़े पर सोचना चाहिए कि ईश्वर के साथ मिलने का तो हम इरादा रखते हैं मगर ईश्वर की मखलूक (सृष्टि) के साथ हमारा सलूक (व्यवहार) क्या होता है ? इस जगह हमारा प्रेम कैसे-कैसे रंगोरूप भरा करता है। क्या इस पर कभी किसी ने ग़ौर किया है? अगर ग़ौर नहीं किया है तो आज हमारे साथ थोड़ी देर के लिए हमारे हमख़्याल (विचार मिलाकर) हमज़बान (समवाणी) होकर, अगर ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही ग़ौर करो। उस प्रेम की मुख़तलिफ़ (विभिन्न) सूरतें नज़र आने लगेंगी जिनको देखकर बाग़- बाग़ (खुश) हो जाओगे। प्रेम की चाल इकरुख़ी (एकांगी) होती है मगर उसमें इख़्तेलाफ़ (विपरीत भाव) भी है वह महदूद (सीमित) होता हुआ लामहदूद (असीम) बनने का भी मुश्ताक़ (इच्छुक) है।

कहता नहीं मगर अमल (कर्म) से अपनी हालत ज़ाहिर करता है। वह ऊपर भी है और नीचे भी। वह दरम्यान (मध्य) में भी है और चारों तरफ भी।

जो लोग हमसे छोटे हैं उनसे प्रेम का बर्ताव, दया, नेकी, क्षमा वग़ैरा कहलाता है। हम भूखो को खाना, प्यासों को पानी देते हैं। उनकी तक़लीफ़ों को देखकर रो देते हैं क्योकि हमारे अन्दर यह ख्याल समा गया है कि ईश्वर नेक है, रहमदिल है, सखी (उदार) और करीम (कृपालु) है। अगर हम उसकी याद करते हैं या उसके नाम की माला फेरते हैं, अगर हम ख़्याली तौर पर हमनशीं (साथ बैठना, ध्यान करना) होते हैं तो याद रहे कि सुहबत (संग) कभी बेअसर नहीं होती। अगर हम इन तारीफ़ों से ख़ाली हैं तो समझ लो हमारी भक्ति, प्रेम अभी तक झूँठे हैं और संसारी तलब (इच्छा) रखते हैं और इसमें सच्चाई नहीं है। राजा के दरबारियों को यूं ही आप से आप इज़्ज़त मिल जाती है।

आग के पास गर्मी और पानी के पास ठण्डक मिलती है, फिर कैसे मुमकिन है कि हम ईश्वर से उल्फ़त (प्रेम) का दम भरें और उसके जौहर (गुण) हममें न आवें। मान लिया जाय कि अभी हम ख़्याली मरहलों में हैं, सिर्फ ख़्याल करते हैं और अपने ख़्याल को पका रहे हैं। बहुत दुरुस्त , मगर ख़्याल, तसब्बुर, वहम, यह ही बेअसर नहीं रहते, कुछ न कुछ इनका भी तो असर रहना चाहिए।

जैसा ख्याल है वैसा ही कर्म है और वैसा ही हाल है। यह है प्रेम की सूरत छोटों के साथ। जो हमारी बराबर की हालत और इज़्ज़त वाले हैं उनके साथ व्यवहारिक प्रेम दोस्ती, आशनाई। मित्रता वग़ैरा का होता है। क्योकि ईश्वर हमारा सच्चा दोस्त है। वही दोस्ती बराबर वालों के साथ बरतते हैं। बड़ों के साथ प्रेम का बरतना, ताज़ीम, इज़्ज़त, प्रणाम, नमस्कार और आदाब कहलाता है।

हम जानते हैं कि ईश्वर बड़ा है, क़ाबिल ताज़ीम, क़ाबिल इज़्ज़त व क़ाबिल पूजा के है। इसलिए जब उसका प्रेम हम पर असर कर जाता है, हम जिसको किसी माने में बड़ा बुज़ुर्ग समझते हैं उनके साथ अदब से उठते बैठते हैं और उनके आदाब व मरातिब (उच्च श्रेणी) का लिहाज़ रखते हैं।

हमको न किसी से नफ़रत है, न हसद (ईर्ष्या) न बुग्ज़ (द्वेष), न अदावत (शत्रुता)। सबके साथ हम उसी प्रेम को अलग अलग सूरतों में बरतते हैं। इसके अलावा हमारे चारों तरफ़ है क्या ? हवा, आसमान, पेड़, पानी, हैवान और बहुत से सामान हैं । इनके साथ हम क्या करते हैं ? हमको ख्याल पड़ता है कि हम हवा को न बिगाड़ें, बवा (बीमारी) फैलेगी, पानी को गन्दा न करें नहीं तो बीमारियाँ फैलेंगी। हम पेड़ों को पानी दें, हैवानों (पशुओं) के साथ मुहब्बत से पेश आयें, क्योकि इन ख़्यालात में हमको बेगरज़ाना ख़िदमत (निस्वार्थ सेवा) का मौका मिलेगा।

आदमी आदमी के साथ मुमकिन है किसी गरज़ से सलूक करे मगर यहाँ अगर ग़ौर से देखा जाय तो आला दर्ज़े की निष्काम सेवा का खयाल रहता है। हम ऐसा करने पर क्यों आमादा (उतारू)

होते है। क्योकि हमको ख़्याल है और इल्म भी कि ईश्वर का सब काम बेगरज़ाना और निष्काम होता है और हम भी वैसा करने को मज़बूर होते हैं और उसी उसूल (नियम) को मद्देनज़र (दृष्टि में) रखते हुए हम सब तरफ से साफ़ सुथरे रहते हैं और अपने को ज़ब्त (नियंत्रण या अनुशासन में) रखते हैं कि हमारी ज़ात (व्यक्तित्व) से किसी को नुकसान न पहुँचे।

दुनियाँ में प्रेम सबसे ज़्यादा खूबसूरत चीज़ है तो सच्चा प्रेमी उससे कम खूबसूरत नहीं हो सकता। प्रेमी इन्सान, इन्सान को कौन कहे , हैवानों के साथ भी हंसकर बोलते और दिली इत्मीनान की निगाह से देखते है।

प्रेमी प्रेम की दौलत पाकर खुश हो जाते हैं और इसी ख़ुशी की वजह से बेख़ौफ़ (निडर) और बेग़म (निश्चिन्त) बन जाते है। किसी को आज़ार (यंन्त्रणा) नहीं देते और न किसी का मन, वचन, कर्म से दिल दुखाते है। परिन्दे (पक्षी) उनके सर पर मंडराया करते है। शेर उनके पाँव से माथा रगड़ते है। न प्रेमी किसी को सताते हैं न कोईं प्रेमी को सताता है क्योंकि सताए जाने का ख़याल तक की यहाँ गुंजायश नहीं है। जो जी में आवे करो, करते रहो, मगर किसी का दिल मत दुखाओ। ऐसा करने से हमारी सारी बुराइयाँ आप से जाती रहेंगी। क्योंकि प्रेम दिल को जला देने (चमकाने) वाली, दिमाग़ को रोशन (प्रकाशित) करने वाली और जिस्म को पाक (साफ़) करने वाली चीज़ है। फ़ारसी के एक कवि **मौलाना रूम** फरमाते हैं

" अगर एक प्रेम ही दिल में बस जाय तो कुछ करने धरने की ज़रूरत नहीं,
कहाँ का जप, कहाँ का तप, कहाँ का अमल कहाँ का शगल, सब फ़िज़ूल
बेफायदा। प्रेम सारे मर्ज़ों की दवा है। मर्ज़ चाहे जिस्मानी हो, दिमाग़ी, दिली
या रूहानी, प्रेम सबको मेट देता है। प्रेम आया नहीं कि सारी बुराइयों की
जड़ कटी नही।"

प्रेमी की आँख प्रियतम के सिवाय किसी को नहीं देखती, न शिक़वा है न शिकायत। यह राज़ी-व-रज़ा (ईश्वर की मर्ज़ी) में ख़ुश रहने का तरीक़ा है। यही ईश्वर अर्पण और ईश्वर पारायण का मार्ग है। दुनियाँदार रोते व चिल्लाते व मालिक को भला- बुरा कहते रहते हैं क्योंकि उनकी निगाह मालिक की तरफ़ नहीं है, अपने मतलब की तरफ़ है। खुदगर्ज़ी (स्वार्थ) खुदमतलबी का ख़याल है। ख़ुदी सारे झगड़ों की माँ है।

कोई इन नादानों से पूछे कि ईश्वर अक़्लमन्द है या नहीं ? अगर वह अक़्लमन्द है तो दुनियाँ में बदसूरती कैसी ? अगर वह मुक़म्मिल (पूर्ण) है तो उसकी कारीगरी में ऐब (दोष) कैसा, और कामों में नुक्स व कमी कैसी ? कहाँ तक कहा जाय ? उसका दीदार(दर्शन) सिर्फ़ सच्चे आशिक़ व प्रेमियों को मिलता है।

अब समझ में आ गया होगा कि इश्क़ कैसे नापाक (अपवित्र) दिल को पाक (पवित्र) करता है व संगदिल (पाषाण हृदय) को मोम बना देता है। इश्क़ एक आग है जो दिल की अंगीठी में जलती है और दिल की सब बुराइयों को जलाकर खाक़ कर देती है और माशूक़ (प्रियतम) के सिवाय कुछ भी नहीं रहने देती।)

प्रेमी रोते है। माशूक़ की चाह में जान खोते हैं क्योंकि यह जिस्म फ़ानी(नाशवान) है, सिर्फ़ माशूक़ ही बाक़ी है। कोई ऐसों को चाहे जिनूनी कहे या दीवाना बताये मगर यह सच्चे अक़्लमन्द, सच्चे जौहर-शिनाश (परखने वाले) होते है। इनकी जो मुराद (मंशा, लक्ष्य) होती है उसके सिवाय किसी तरफ़ निगाह नहीं करते और अगर देखते भी हैं तो इस तरह से :-

सिया राम मय सब जग जानी

करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी

शायद कोई कहे कि इश्क़ ख़्याल है। हाँ, बेशक ख़्याल है। मगर यह भी तो सोचना समझना चाहिए कि ख़्याल चीज़ क्या है ?

उपनिषद में एक जगह लिखा है कि इन्सान सिर्फ़ ख़्याल से पैदा किया गया है। इसलिए वह जो कुछ सोचता है वही हो जाता है। इन शब्दों में " पैदा किया गया " पर ग़ौर करो। क्या अजब असलियत समझ में आ जाय।

दिल को आग की भट्टी बनाओ, उसमें ख़्याल के सोने को रात-दिन खूब तपाओ, मैल जल जायेगा और कुन्दन चमकने लगेगा, यह तो समझ में आता है। बाक़ी अल्लाह अल्लाह ख़ैर सल्ला।

अब सबाल यह है कि इश्क़ पैदा कैसे हो ? जबाब (1)- तलब (ख्वाहिश या इच्छा) को बढ़ाते चलो, उससे रोज़- रोज़ शौक़ बढ़ता जाय। जबाब (2) - गुरु के पास जाओ और उनकी ज़ात (व्यक्तित्व) के साथ यानी मतलब को दूर रखकर सच्चा प्रेम करना सीखो। वे दुनियाँ में प्रेम मुजस्सिम (साक्षात् प्रेम मूर्ति) इश्क़ मुजस्सिम और हक़ीक़त (सत्य) मुजस्सिम हैं यह हो सकता है कि किसी को

किसी अवतार का इष्ट हो। किसी गुज़रे हुए फ़क़ीर के साथ मुहब्बत हो। अगर इन बातों का ख़्याल है तो हम किसी के साथ उलझने को तैयार नहीं है।

जो जिसका इश्क़ रखे वह उसको कर देखे। मगर इतना सोच ले कि वैद्य धन्वन्तरि मर गए, अब दवा कौन देगा ? पुराने सोते सूख गए, अब पानी कहाँ से मिलेगा ?

इश्क़ किसी का भी हो, अच्छा है। औरत का इश्क़, माता -पिता का इश्क़, भाई का इश्क़, सब अपनी -अपनी जगह मुबारिक है। मगर सच्चे मुबारिक वे हैं जो इश्क़ के जिन्दा सरचश्मे (श्रोत) पर पहुँच कर शादाब (ओत प्रोत) और सैराब होकर तस्कीन (शांति) पाते है। यानी सतगुरु की सेवा में जाकर सत्संग करके उसके प्रेम से मालामाल होते हैं या सच्चे पिता परमात्मा में अपने आप को लय करके उसके प्रेम में ओत -प्रोत होते है। सच्चा प्रेम केवल दो ही जगह पर मिलता है - या तो परमपिता परमात्मा के चरणों में या उन भक्तों में जो सच्चे दिल से उसके प्रेमी हैं और जिनको ' गुरु ' कहते है। लाख मूरत के सामने नियाज़ (भेंट) चढ़ाओ मगर न वह बोलेगी न सच्चे माने में किसी को इश्क़ की वेदी पर तन मन भेंट करने का मौक़ा मिलेगा।

गुरु चमड़ा, हड्डी, गोश्त का नाम नहीं है। वह आईडियल है, आदर्श है। पहले ज़ाहिर सूरत पर निसार (न्योछावर) होना सीखो फिर आप से आप भीतर की तरफ़ चले जाओगे। भीतर (बातिन) अन्दर है बाहर नहीं।

हम न गुरु हैं, न गुरु बनने का दावा है। मगर मालिक के हुक़्म से सच्चाई की तरफ़ जाने और चलने की प्रेरणा करते है। यही गुरु का हुक़्म है। हम ही सिर्फ़ ऐसा नहीं करते परन्तु पहले से भी सभी ऐसा करते आये है। वेद, उपनिषद, गीता में भी यह नज़र आएगा :-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु , गुरुदेवो महेश्वरः
गुरु साक्षात परब्रह्म , तस्मै श्री गुरुवे नमः

अगर किसी को यह मन्ज़ूर न हो, न सही, मगर प्रेम से ख़ाली नहीं रहना चाहिए। किसी के प्रेम को दिल में जगह दो, वह आप किसी वक़्त रास्ता खोज निकालेगा। हाँ, ज़रा देर लगेगी, मगर क्या हर्ज़ है - देर आयद दुरुस्त आयद (जो काम देर में होता है वह दुरुस्त होता है)। और नहीं तो तलब को ही तरक़्क़ी देते चलो।

एक जिज्ञासु किसी फ़क़ीर के पास गया और कहा, " मुझे ख़ुदा के दर्शन करा दो।" फ़क़ीर उसके जज़्बातों ((भावनाओं) को जान गया और कहा सब्र से काम लो। मगर ' उताबला सो बाबला ' नादान को सब्र कहाँ ? बोला, " नहीं बाबा, जल्दी होना चाहिए " फ़क़ीर ने उसकी गर्दन पकड़ कर अपनी धूनी में डालनी चाही। धुआँ लगा, घबराया, कश्मकश करने लगा। फ़क़ीर ने छोड़ दिया, तब उसकी जान में जान आयी। तब उसने पूछा कि "आग के पास तुझे किस बात की ख्वाहिश हुई। " उसने कहा कि " दम घुटता था, हवा चाहता था और आग से बचने की तलब थी।" साधु ने कहा, " बेटे ! यह संसार आग का घर है, इससे जब तक किसी क़िस्म की नफ़रत न हो और मालिक के चरणों में जाने की ऐसी ही ख़्वाहिश न हो जैसी तुझे आग से बचने की और खुली हवा में सांस लेने की हुई थी, तब तक तू अधिकारी नहीं बन सकता। जा, तलब को तेज़ करता रह। फिर कभी उसका भी वक्त आएगा। "

मतलब यह है कि प्रेमी इस तरह के विरक्त और दुनियाँ के झगड़ों से आज़ाद होकर तलब माशूक़ की राह में आते हैं। बाक़ी सब कूड़ा-करकट है जो संसार की आग में जलते रहते हैं।

बहुत कह चुके ज़्यादा लिखने में तबालत होगी। इसलिए इत्तफा (बस) की जाती है।

---

(3) मार्फत (ज्ञान) व (५) तौहीद

शरीयत, तरीक़त, मार्फ़त, कर्म, उपासना, ज्ञान, जिस्म, दिल, रूह - इन शब्दों को सोचने के लिए बहुत सामान भरा पड़ा है अगर उनकी तरफ कोई तबज्जह करे। इसी तसलीम (त्रिपुटी) के दूसरे नाम तलब, इश्क़, और मारफ़त कहलाते हैं। इससे पहले शायद ही किसी दूसरे ने इन शब्दों से इनको याद किया हो। हमने किसी चीज़ की ज़रूरत समझी, उसकी लगन लग गयी और उसकी पहिचान हो गयी। पहला दर्ज़ा ख़्वाहिश, बीच का दर्जा लगन और पहिचान तीसरा दर्ज़ा (मन्ज़िल) है। ख़्वाहिश एक पेड़ की जड़ है। लगन उस पेड़ का तना है और पहिचान उसका फूल है। दूसरी तरह से यूं समझो - भूख लगी, बढ़ती गयी, भूख की पहिचान हो गयी। यह तीनों दर्ज़े त्रिपुटी के हैं। इससे शरीयत, तरीक़त व मारफ़त या कर्म उपासना और ज्ञान से शुरू में ही काम पड़ता है। यह भूल कर भी नहीं समझना चाहिए कि ज्ञान ही सब कुछ चीज़ है। नहीं, अभी बहुत पापड़ बेलने पड़े हैं। ज्यों, ज्यों तरक़्क़ी होती जायेगी त्यों त्यों इनकी समझ आती जायेगी। अभी तो ग़रूर से या नाज़ से लोग कहते रहते हैं कि - " हम ज्ञान मार्ग पर चलते हैं। हमको इल्म इरफ़ान (ब्रह्म विद्या) से ताल्लुक़ है जो चोटी की हालत है।"

मगर दोस्तों चोटी यह नहीं है, समझते चलो। असली मन्ज़िल अभी कोसों दूर है। तलब कर्म है, अमल व शगल जप व तप, कर्म करना ज़रूरी है। कर्म करते हुए, कर्म से ताल्लुक़ पैदा करते हुए उसका प्यार आवेगा। यही इश्क़ है, यही उपासना है, यही भक्ति है, यही प्रेम है और जब कर्म की माहियत (तत्व) समझ में आने लगी वही ज्ञान हुआ, वही इरफ़ान हुआ, वही इल्म जात हुआ।

बात एक है उसकी सूरतें तीन हैं और यह क़ुदरती है। ज़िन्दगी में इससे काम लेना पड़ता है। बच्चा पहले हाथ -पाँव मारता है। तनोतोष (शरीर) से लहीम व शमीम हो जाता है फिर मन से सोचता है। इसके बाद अक़्ल से काम लेता है। तीनों हालतों में उसकी नशिश्त (बैठक) तीन अलग अलग तबक़ों (श्रेणी) में हुआ करती है।

तवज्जह (ध्यान) की पहली बैठक जिस्म (शरीर) है, दूसरी दिल और तीसरी दिमाग़ है। जिस्म की तरबियत (गढ़त) कर्म है। दिल की तरबियत (गढ़त) उपासना है और अक्ल की तरबियत ज्ञान है। जवान को शादी की फ़िक्र हुई। ये शरीयत है। बीबी का ख्याल पैदा हुआ, यह तरीक़त है। बीबी की समझ आयी , यह मारफ़त है। ऐसा भी होता है कि कोई किसी में अटक रहता है और कोई किसी में।

जिस्म में अटकने वाला पहलवान, दिल में अटकने वाला नेक जज़्बात (भावनाओं) का इन्सान और अक्ल में अटकने वाला ज्ञानी कहलाता है। तीनों की तीन हैसियतें हैं और अपनी अपनी जगह पर ज़रुरी और लाज़िम है। मगर मुबारिक (धन्य) वह है जो तीनों को ही धीरे-धीरे बढ़ाकर अपनी तरक़्क़ी कर जाता है। वही वली, नवी, अवतार का दर्ज़ा पायेगा। आज नहीं कल ही सही, तरक़्क़ी के दर्ज़ों के मरहलों (समस्याओं) का तै करने वाला ऊपर की तरफ़ चढ़ता जायेगा। ऐसे आदमी को कोई ताक़त रोक नहीं सकती, ऐसों की रुकाबट दुनियाँ में मुमकिन नहीं है।

अगर तलब और इश्क़ की मन्ज़िलें तय हो गयीं तो इर्फान (ज्ञान) के मुक़ाम (घाट) पर आना चाहिए। यह हालत तीनों में सबसे ऊँची है। यहीं अपने मुराद (लक्ष्य) की समझ आवेगी और ज़ात (व्यक्तित्व) का इल्म हासिल (प्राप्त) होगा। इसी की बदौलत ख़ुदा की समझ आवेगी, जो असल में तुम्हारी ही ज़ात है। ज़ात का इल्म बेहतरीन (सर्वोच्च) इल्म है, बेहतरीन हिक़मत और बेहतरीन साइन्स है।

सारे इल्मों की जान यह है कि " जिससे यह समझे कि मैं कौन हूँ"। हर चीज़ की क़ीमत तू जनता है मगर अपनी क़ीमत तू नहीं जनता। यह गधापन ही हो सकता है कि कोई यह सवाल कर बैठे कि बिला (बिना) विसाल (मिलान) बिला दीदार (देखे) यह इल्म कैसे हो सकता है? सवाल बेशक़ मज़ेदार है। मगर देखो भाई, पहले अपनी बीबी को देख लेते हो और तब मज़े उड़ाते हो या इससे पहले? कहो सच है या झूँठा? यह तो ज़रूर ही मानोगे, माने वग़ैर चारा नहीं है।

आखिर कोई, जिसका नाम तो है नैनसुख मगर है " आंख के अंधे" कह उठे, अंधे को अपनी औरत की सूरत नज़र नहीं आयी और भोग विलास कर लेता है। खूब, अक्ल के नाखून लो, इल्म एक तरफ़ का तो है नहीं, छूना, सूंघना, देखना, चखना, सुनना, सोचना, जानना , यह सब ही इल्म है। किस अंधे ने दुल्हन को छुए वगैर हमआग़ोशी (आलिंगन) के मज़े लुटे है? अब भी समझे या नहीं ? अगर

नहीं समझे तो अभी और जहालत (अज्ञानता) की हवा खाओ। मिसाल पहले आ चुकी है मगर फिर भी सुनकर समझो।

पत्थर बनाने वाले को तलब (ख्वाहिश) हुई कि मूर्ती बनावे। उसने हाथ में हथोड़ा लिया और पत्थर को गढ़ने लगा। उसमें शक्ल बनता ही खतो-खाल (प्रतिमा) निकालता है और उसको ख़ूबसूरत बनाता है। यह ख़ूबसूरती कहाँ से आयी? उसी के अपने दिल से निकली और अन्दर छिपी हुई है। यही इल्म, यही इरफ़ान (ज्ञान) है। ज्ञान के सींग पूँछ नहीं होती। अभी उसकी गढ़ी हुई मूर्ति पूरी भी नहीं हुई मगर ज्ञान पहले से ही हो गया। मूर्ति अधूरी है मगर समझबूझ मौज़ूद है। कहो सच या झूँठ ?

ज्ञान की यह थोड़ी सी मगर साफ़ तशरीह (व्याख्या) है। इसको किताबों में तलाश करना फ़िज़ूल है। अपने दिल में तलाश करना चाहिए जिसमें तमाम किताबें भरी पड़ी हैं और इल्मों का खज़ाना है।

किताबों में धरा क्या है, बहुत लिख लिख कर धो डालीं
हमारे दिल पै नक़्शेकल, हज़र हैं तेरा फ़रमाना
न देखा वह कहीं जलवा, जो देखा ख़ानए-दिल
बहुत मसजिद में सिर मारा, बहु त सा ढूँढ़ा बुतखाना

इसी तरह जब तलब (इच्छा) और इश्क़ (प्रेम) जोश पर आते हैं इरफ़ान (ज्ञान) का हासिल होना लाज़िमी (आवश्यक) और ज़रूरी हो जाता है। पेड़ लगाया उसमें फूल आये, फल का आना ज़रूरी और क़ुदरती है अगर पेड़ को खस्सी नहीं किया गया।

यह ज्ञान है, यही इरफ़ान है। वह तुममे है, तुम से है और वह खुद तुम हो बशर्ते इसकी समझ तुम में आ गयी है। नाक को सीधी तरह से पकड़ो, चक्कर देकर पकड़ने से क्या फ़ायदा?

इरफ़ान (ज्ञान) हक़ीक़त (वास्तव) में दिल के पर्दों को चाक (फाड़ना) करते हुए उनके अन्दर अपनी ही असलियत को देखना है और कुछ नहीं।

जाग्रत और स्वप्न से ऊपर चढ़कर सुषुप्ति पर ग़ालिब आना, ज्ञान है और सत, रज, तम को दबा कर बैठना ज्ञान है। जबरत (जाग्रत) मलकूत और नासूत के तबकात को तै कर जाना इरफ़ान है।

साइन्स अच्छा, इल्म अच्छा, अक्ल अच्छी - सभी अच्छे हैं मगर सबसे अच्छा यह ज्ञान है और ज्ञान से मुराद सिर्फ़ इतनी है कि अपने आपको पहिचानना, अपनी माहियात से वाक़िफ़ होना और अपना ज़ात ख़ास का इल्म पा लेना।

ज्ञान की मंज़िल पर वे पहुँचते हैं जिन्होंने जिस्मी, दिली और अक़्ली तरक़्क़ी कर ली है। और तो नाहक भ्रम में फँसा देते हैं और भ्रम इन्सान को मार देता है।

यह ज्ञान दूर की सूझ सुझाता है। मगर इन्सान लफ़्ज़ों (शब्दों) के धंधों में न फँसे और सिर्फ़ नफ़्स मतलब पर निगाह रखे वर्ना वह ज्ञानी नहीं, वाचक ज्ञानी कहा जा सकता है। दुनियाँ में ज्ञानी कम होते है। हज़ारों मरदों में से कोई एक ही सखी का लाल ऐसा निकलता है। ज्ञान अपना आप बदला है।

इल्म पढ़कर नौकरी की जाती है, क्यों ? रुपया कमाने को। इसमें रुपया नहीं मिलता फिर इसमें क्या मिलता है ? ख़ुशी, दिल की ख़ुशी, इल्म की ख़ुशी, अपनी हस्ती की ख़ुशी और अपनी जात की ख़ुशी। यह क्या कम है, नहीं यह चीज़ सबसे बढ़कर है। यह ज्ञान आत्मा के करीब (निकट) पहुँचाता है। सिर्फ़ आत्मा ही गैरमुतहर्रिक (हरकत न करने वाली) और अचल है। सब इसमें गुंथे हुए हैं, यह किसी में गुंथा हुआ नहीं है। जिस्म इसका, दिल इसका, मगर यह किसी का नही। आज़ाद-मुतलक़ (निर्लेप) बे- क़ैदोबंद (जो किसी की क़ैद में न हो) यह आत्मा बे-ताल्लुक़, बे-लाग लिपट, बे- क़ैदोबंद का है। असल में यही सब कुछ है और कुछ भी नही।

एक क़िस्सा भगवान कृष्ण का का याद आ गया। क़िस्सा मज़ेदार है।

एक दफ़ा रुक्मिणी जी ने कृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभु ! अगर आज्ञा हो तो महर्षि दूर्वासा जी के दर्शन कर आऊँ जो यमुना के उस पार ठहरे हुए है। कृष्ण भगवान ने आज्ञा दे दी। किन्तु इत्तफ़ाक़ से (संयोगवश), किश्ती न थी। रुक्मिणी जी ने कृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि है प्रभु! किश्ती नहीं है, किस तरह यमुना पार जाऊँ। कृष्ण भगवान बोले :-

" यमुना से जाकर कहना कि अगर कृष्ण ने कभी मेरे साथ भोग नहीं किया है तो तू मुझको रास्ता दे दे।" रुक्मिणी जी को ताज्जुब हुआ, दिल में कहने लगी, " इनका और मेरा हमेशा ही साथ रहा है, और यह कहते हैं कि मैंने कभी भोग नहीं किया है।" मगर वह चल खड़ी हुई। यमुना को वह सन्देश सुना दिया। उसने रास्ता दे दिया। इधर =उधर पानी और बीच में खुश्की। वह दुर्वासा के पास पहुँची। पकवान का टोकरा रख दिया। दुर्वासा ने खूब खाया और दुआ दी। वह चलते समय कहने लगा - "

यमुना चढ़ी हुई है, पार कैसे उतरूंगी।? दुर्वासा ने पुछा-" आई कैसे ?" उसने कृष्ण का बताया हुआ मंत्र सुनाया। दुर्वासा हँसे, और कहा, " अच्छा, यमुना से कह दो -अगर दुर्वासा ने तेरा पकवान नहीं खाया हो तो रास्ता दे दो।" वह और भी हैरान हुई कि अभी इस मसख़रे ने सारा पकवान चट कर दिया और कहता हैंनहीं खाया। चल खड़ी हुई और यमुना ने उसी तरह रास्ता दे दिया। उसने कृष्ण के पास आकर पूछा, इसमें क्या भेद है ? उन्होंने जबाब दिया, _ " कृष्ण और दुर्वासा दोनों ही आत्मा हैं, गोपियाँ इन्द्रियाँ हैं। कहने को सारे काम आत्मा के मंसूब किये जाते हैं, मगर वह सबसे अलग थलग रहती है।"

यह आत्मा की असलियत है। सब कुछ करती है और कुछ नहीं। इस आत्मा का जलाल (प्रकाश) दुनियाँ में नुमांया (चमकता) होता है और तलब और इश्क़ के बाद इसकी समझ आती है।

तलब हो गयी, इश्क़ हो गया, यक़ीन हो गया। तलाश और तलाश की सरगर्मी और दिली ख्वाहिश की पहिचान किस क़दर हासिल हुई। अब उसे मिलकर एक रहने की हविस है। हिज्र (विरह) का ज़माना गुज़र चुका। विसाल (मिलन) की बारी आनी चाहिए। दुनियाँ इज्तमाय ज़िद्देन (द्वन्द) की हालत है। एक का होना दूसरे का सबूत है। तुम इस वास्ते हो क्योकि हम भी हैं। हम इस वास्ते हैं क्योंकि तुम मौज़ूद हो। अगर इनमें से एक भी ग़ायब हो जाय तो फिर ' हम ' और 'तुम' दोनों बेमानी (निरर्थक) मादूम (नाश) बेमसरफ़ हो जाएँ। इसलिए इस द्वन्द की रचना में एक के साथ ही हमेशा लगे हुए हैं। भूख व आसूदगी, रात व दिन, रंज व ख़ुशी, बंधन व मोक्ष, ज़ात व सिफ़ात (गुण)।

अभी तक हम दो करते आये हैं। दो के नाम ज़िक्र करते आये हैं। अब एक मिलेगा या नहीं। अब तक नादान बन कर अपनी नादानी दिखाते आये। दानाई भी आएगी या नहीं ? दो में झगड़े रगड़े हैं, एक में आराम है। जब एक रहेगा तब किससे कहेगा और क्या कहेगा ? किसकी सुनेगा और क्या सुनेगा ? किसको जानेगा और क्या जानेगा ? वहाँ वो नहीं है कि एक दूसरे से बोल सकें व एक दूसरे के रंज में शामिल हो सकें। इसलिए एक की ख़्वाहिश थी, वह मिल गया, अब क्या

रहा ? पहिचानने के साथ ही तौहीद (एकता) की परिक्रमा शुरू हो गयी। एक है, एक की पहिचान होने पर तौहीद (एकता) के दरवाज़े पर परिक्रमा शुरू हो गयी। शमा (चिराग़) पर परवाना (पतंगा) गिरा, जलकर उसी में खाक़ (भस्म) हो गया। बूँद समुन्द्र में गिरी, अपनी हस्ती खो बैठी।

यह तौहीद है मगर इसकी समझ लाखों में से किसी एक को आती होगी। तसलीम परस्त (तीन को पूजने वाला) कहता है -

" ख़ुदा है, प्रकृति है, आत्मा है और ये तीनों अनादि है।" दो को मानने वाला कहता है, " सारी आत्मा असल व नसल के लिहाज़ से एक है। ख़ुदा को मानने की ज़रूरत नहीं है।" एक को मानने वाला कहता है, " तुम दोनों की बातें बेमानी है। यह क्यों नहीं कहते कि सिर्फ़ ख़ुदा ही है और कुछ नहीं, ' हमाओस्त व हमाअज़ोस्त ' मानो, वही सब कुछ है और उसी से सब कुछ है।' देखा, तीन मुंह और तीन बातें। इनमें अपनी अपनी जगह सब सच्चे और अपनी जगह छोड़ने पर झूँठे।आगे देखिये मुवाहिद (एकवादी) लोगों में भी तीन तरह के आदमी हैं :-

(1) द्वैताद्वैत जो मौक़े पर द्वैत और मौक़े पर अद्वैत बनता है।

(2) विशिष्टाद्वैत जो एक ज़ाते-वाहिद (एक हस्ती) में दो बातें जड़ व चेतन मानता है।

(3) अद्वैत, जो जड़ व चेतन को फ़र्ज़ी व ख्याली बताता है। सिर्फ़ ज़ात-वाहिद (एक हस्ती) को हक़ (सत्य) समझता है।

इसमें रगड़े झगड़े हुआ करते है। क्योंकि यह सब असलियत से दूर है। बात बनाना तो सीख गए। दलील व हुज्जत (तर्क वितर्क) हमेशा ज़बान पर रहती है। तौहीद कुछ और है और यह समझे कुछ है। अगर यह ख़ालिस वाहिद (एक को मानने वाले) हों तो इनमें झगड़ा होने की क्या ज़रूरत। बहस मुबाहिसा की क्या ज़रूरत थी ? क्योकि तौहीद तक पहुँचते- पहुँचते सारे झगड़े ऐसे ग़ायब हो जाते हैं जैसे गधे के सिर से सींग या बाँझ का लड़का।

हम तौहीद किसको कहते हैं ? ' दो को मिलकर एक हो रहना' - इस तरह से कि फिर दुई का ख़्याल तक दिल में न आने पावे। यह असली तौहीद है।

मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी
ता कस न गोयद बाद्ज़ी, मन दीगरम तो दीगरी

अर्थ -- मैं तू हो गया और तू मैं हो गया। मैं जिस्म बन गया और तू मेरी जान बन गया ताकि अब कोई यह न कह सके कि मैं और तू दो है।

खाविंद बीबी के साथ हमआग़ोश हो गया (गले मिल गया)। दोनों एक है। इस वक़्त कोई झगड़ा रगड़ा नही। मज़ा ही मज़ा है, खाविंद बीबी से अलग हो गया, एक से दो हो गए। अब झगड़े ही झगड़े हैं। सब मज़ा किरकिरा हो गया। यह रोज़ाना कारोबार में देखा है।

यह मिसाल तौहीद को समझने में कुछ मददगार होती है। मगर यह भी ख़ालिस तौहीद नहीं है और तौहीद कभी ख़ालिस नहीं होती। एक के साथ दो का झमेला लगा ही रहता है। जब तक यह ख़्याल कि हम आशिक़ मुवाहिद (एकवादी) हैं तब तक माशूक़ (प्रियतम) और दो की हस्ती का ख़्याल रखते हुए असलियत से दूर रहेंगे। इसलिए दुनियाँ के व्यवहार में यह लफ्ज़ महज़ ख़याली और फ़र्ज़ी है, न कोई असलियत है। जब तक मुवाहिद (एक को मानने वाला) ज़ात-वाहिद (एक पना) में ख़ुद को भुलाकर तौहीद के ख़्याल तक को फ़रामोश (भुला) न कर देगा, तब तक तौहीद (ध्येय) की असली मुराद ज़हन में नहीं बैठ सकती और यही सबब है कि जिनको ज़रा भी अच्छी समझ बूझ है वे तौहीद की डींग नहीं मारते, चुप रहते हैं।

हक़ हक़ है, नाहक़ नाहक़ है। तौहीद में न हक़ है न नाहक़ है। जो तौहीद की बाँग लगाता रहता है वह द्वैतवादी है और जो तौहीद का पूजने वाला है वह बुतपरस्त है। जो इशारा करता है वह ग़ाफ़िल है और जो उसकी बातचीत करता है वह जाहिल है क्योंकि तौहीद उसके लिए है जो मुवहिद है (एक मानने वाला) जमाल (प्रकाश) का पर्दा है। तौहीद बतौर ख़ुद कमाल है जिसको दीद व शुनीद (देखना व सुनना) महज़ वहम और ख़्याल है।

जबाँ बंद कर , लब को खामोश कर
न कुछ मुंह से कह, होश कर होश कर

मगर इसकी समझ कैसे आये? इसको किस तरीक़े से समझना चाहते हो ? हिकमत से या फ़िलसफ़ा से या साइन्स से, ताकि समझाने की कोशिश की जाय। मगर यह न कहना कि तुम भी बोल उठे आख़िर। बोलना झगड़ा मोल लेना है। बोले नहीं कि मतलब हाथ से गया नहीं। मगर ख़ैर, जैसा बनेगा वैसा समझायेंगे। अगर समझते हो तो सुभान अल्लाह , तुम हम दोनों खुश। अगर नहीं समझते हो इस्तख़फ़ुरउल्ला, हम भी डूबे और तुम भी डूबे। अगर समझने की ख़्वाहिश है तो इन्शाअल्लाह, हम भी ख़ुशनसीब तुम भी ख़ुशनसीब।

सबसे पहले अपनी तरफ़ नज़र करनी चाहिए। अपने जिस्म को देखो, वह छोटी कायनात (दुनियाँ) है। इसमें कितनी नस नाड़ियाँ हैं, कितने रग व रेशे, खून व चर्बी, कितने गोश्त व पोस्त (खाल) मौजूद है। कसरत (बहुतायत) है, इससे कौन इन्कार कर सकता है। मगर सब आपस में गुंथे हुए हैं और यह गूंथना तौहीद और एकपना कहलाता है। और आगे चलो, एड़ी से चोटी तक तुम सिर्फ़

एक हो, इसमें कोई दूसरा नहीं है। गोश्त पोस्त वग़ैरा सब तुम में है और वही तुम हो। देखो एक है या नही। यही तौहीद है।

" **हमाओस्त व हमाअज़ोस्त** "। -- मिसाल (उदाहरण) समुन्द्र में पानी, मोती, मूँगा, लहर, कौड़ी, व शंख सभी कुछ है। इन्हीं की एकजा (सम्मिलित) हैसियत का नाम समुन्द्र है। किसी एक को या सबको अलग- अलग कर लो तब समुन्द्र कहाँ रहा ? एक में बहुत और बहुत में एक का तमाशा था। वह दूर हो गया। अब समुन्द्र नहीं रहा। समुन्द्र वहदत (एक) है और बाक़ी सब चीज़ कसरत (अनेक) हैऔर भी इसी तरह की मिसालें दीं जा सकती है।

अब साइन्स क्या कहती है, यह भी सुन लो। चीज़ एक है। कीमिया के अम्ल से उसमें हज़ारों सूरतें पैदा हो गयी। पानी में हरकत और हिलोर पैदा हुई, झाग आ गया। झाग सूखा, मिटटी बन गयी। मिटटी से पेड़, पत्थर, इन्सान (मनुष्य) हैवान (पशु) सब बन गए। मिटटी के अजज़ा (अंगों) को हलकर (मिला) दो। अब सिवाय पानी के और क्या रहा ? द्वैतवादी झगड़ालू, तसलीमी (त्रिपुटीबाद) मुफ़सिद (झगड़ा करने वाले) व शरीर (उपद्रवी) हैं मुवाहिद (अद्वैतवादी) अच्छा है। इससे किसी का झगड़ा नहीं रहता न वह बहस मुबाहिसे में पड़ता है। जो समझ लिया वही सब कुछ है। खुद अपनी ज़िन्दगी के रोज़ाना बरतावे को देखो। तुमको अपने से छोटे कमअक्ल आदमियों से नफ़रत (घृणा) थी। तुमने सोचा कि ऐसे आदमियों के साथ रहना- सहना पड़ेगा। अपने हालात को उनके हालात से साथ मिला दिया। निगाह ऊँची होते ही नफ़रत का फ़र्क कम होने लगा। तुम उन जैसे और वे तुम जैसे बनने लगे। अब न वह नफ़रत है न कदूरत (दुराव)। तुम उनकी कमज़ोरियों को दया और क्षमा की निगाह से देखते हो। वे तुमको प्यार करते हैं, तुम्हारी इज़्ज़त करते है। अब तुम भी खुश, वे भी खुश। क्योकि ख़ुशी वहदत व एकपने में है।) नाजिन्सीयत(गैरपना) झगड़े की जड़ है। हमजिन्सीयत (जातिवाचकता) इतमीनान क़ल्ब (हृदय) की हालत है और यही तौहीद है। इसी की सबको ख़्वाहिश होती है। तौहीद का मसला समझा दिया अब इस थियेटर का ड्रोपसीन होता है। फिर वही मज़हवी उधेड़बुन की तरफ चलने का ख्याल है क्योकि निगाह का नुक़्ता (दृष्टिकोण) वहीं है जो कभी नज़र से ग़ायब नहीं होता और ग़ायब भी कैसे हो ? रात दिन वही अमल और शग़ल रहता है और उसी के मुताबिक़ ज़ज़बात (भावनायें) पैदा किये जा रहे है। इसलिए अगर्चे मिसाल कई किस्म की दी जाती हैं मगर नज़र उसी कि तरफ़ रहती है।

तौहीद के उस्तादों (गुरुओं) ने इसकी कई किस्में की है। तक़सीम (विभाजन) और तरतीब (एकत्रित करना) कुदरत (प्रकृति) का खास्सा (स्वभाव) है अगर कोई तौहीद की भी क़िस्में

मुकर्रिर (निर्धारित) करता है तो हमें एतराज़ (आपत्ति) क्यों होना चाहिए, जो जैसा है और जिसकी जैसी समझ है वैसा ही कहेगा और करता रहेगा, पर मेरे ख़्याल से तौहीद में इख़्तिलाफ़ात (प्रतिकूल भाव) दिखना बेकार है क्योंकि जब उसकी किस्में हो गयीं तो फिर उसमें तौहीद कहाँ रही? वह तो भानमती का पिटारा बन गयीं जिनमें सभी चीज़ें अगड़म बगड़म मौजूद है। ख़ैर, इनकी भी सुनना चाहिए।

मुसलमान सूफ़ियों ने चार किस्में बताई हैं :-

(1) तौहीद (एकपना) शरई (धर्मशास्त्र अनुसार कर्मकाण्ड) यानी ख़ुदा (परमेश्वर) की वहदत (एकपना) का क़ायल होना और उसको अपने से क़दीम (पुराना) समझना और अपने आँख, कान व कलाम (वचन) से आँख, कान व बोलने वाला जानना।

(2) तौहीद तरीक़त (उपासना) - इसकी फिर दो किस्में हैं :

(अ) तौहीद अफ़ाली (कर्म) यानी जुमला मौजूदात को अफॉल - ख़ुदा (ईश्वर का किया हुआ) समझना ।

(ब) तौहीद सिफ़ाति (गुण सहित) यानी जुमला मौजूदात सिफ़ात-बारी) (ईश्वर के गुण) ख़्याल करना।

(3) तौहीद ज़ाती यानी सबको ख़ुदा की ज़ात का मानना।

(4) तौहीद हक़ीक़त यानी उसमें अपने आपको बिलकुल महब (लय) कर देना।

हक़ीक़त (वास्तव) में यह मरहले (समस्या) कुछ नहीं। सूफ़ियों की तौहीद की चार किस्में हो गयीं। अब हिन्दुओं की ज़रा तौहीद सुन लो :-

(1) सालोक्य (2) सामीप्य (3) सारूप्य (4) साजुज्य ।

इसको लोग मुक्ति के दर्जे बतलाते हैं मगर तौहीद भी तो एक तरह की मुक्ति ही है। दो की क़ैद या बन्द से छूटकर एक में आ जाना ही मुक्ति है

तशरीह (व्याख्या) :-

(1) सालोक्य यानी ईश्वर के लोक में दाख़िल होना

(2) सामीप्य यानी ईश्वर के पास पहुँचना

(3) सारूप्य यानी ईश्वर के रूप में दाख़िल होना

(4) सायुज्य यानी ईश्वर के असल ज़ात (निजधाम) में दाख़िल होना।

यह सब मरहले (समस्याएँ) हैं, और कुछ नही।

अब इरफ़ान (ज्ञान) की उस बात की तरफ़ गौर करना चाहिए जिसमें पत्थर काटने वाले और मूर्ति बनाने वाले की मिसाल दी गयी है। मूर्ति बनाने वाले ने अपने दिल के पर्दे फाड़े और उस जौहर को देखा जिससे ख़ूबसूरती की पुतलियाँ हथोड़े के ज़रिये पत्थर से निकाली हुई नज़र आती है। उसने इस जौहर को पहिचाना और समझ लिया कि यह मेरे दिल के पर्दे के भीतर है और मेरी ही ज़ात (व्यक्तित्व) है। फिर उसने क्या किया ? उसमें ठहरने, उसमें एक होकर मिल जाने का यत्न किया। समुन्द्र से लहरें निकलीं और उसी में समां गयी। यह उसकी तौहीद है, और तौहीद भी सच्ची और असली। वह दूसरी जगह कहाँ और किसको तलाश करता ?

तलब (जिज्ञासा) इश्क़ (उपासना) और मारफ़त (ज्ञान) की मंज़िलों को तय करता गया और अपने ही में हक़ीक़त (सत्य) वहदत (एकता) और वहदानियत (एकपन) का तमाशा देखा और उससे मिलकर एक हो रहा। सोचो यह तौहीद हुई या नही। कबीर साहब कहते हैं :-

गुरु मिले तब जानिये, मिटे मोह तन ताप

हर्ष शोक व्यापै नहीं , तब गुरु आपै आपा।

चेला गुरु से मिलकर एक हो रहा है। गुरु उसमें और वह गुरु मैं। जुदाई का पर्दा हट गया। यह महवियत (सुन्न) का स्थान है। तीसरा तिल तलब का मैदान था ; सहसदल-कंवल में इश्क़ का सामान था। त्रिपुटी में मार्फ़त और गुरु दर्शन का। अब सुन्न में तौहीद और वहदत का निशान है। जो गुरु अब तक तीसरे तिल के अभ्यास के वक़्त बाहर नज़र आता था, उसी का ज्ञान और उसी का दर्शन त्रिपुटी में हुआ। अब सुन्न में वह हमारे ही अन्दर है।

देना सीखो, लेने का नाम न लो, मन दो तब यह गुरु मिलेंगे। तन मन धन सब गुरु के अर्पण। इससे पहले गुरु नहीं मिलते। असल बात को समझो। गुरुजन की बुराई न करो। यह असल भेद है। कबीर साहब कहते हैं :-

कबीर वे नर अंध हैं, गुरु को कहते और
हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहिं ठौर

गुरु इष्ट मैराज और मक़सद (ध्येय) है। उसूल से गिरा हुआ आदमी कहाँ ठहर सकता है ? इसलिए गुरु पर सब कुछ न्योछावर है :-

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान
चार लोक की सम्पदा, सो गुरु दीनी दान
सत्य नाम के पटतरे, देने को कुछ नाँय
कहँ लग गुरु संतोषिये, हबिस रही मन माँय

सब कुछ गुरु को दे दो। अपना सारा बोझ उनके सर पर रख दो, फिर आज़ादी से विचरते रहो। कबीर साहब कहते हैं :-

मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर
अब देने को क्या रहा, यूं कथ कहे कबीर
तन मन दिया तो भल किया, जासी सर का भार
जो कबहुँ कह 'मैं दिया' तो बहुत सहेगा मार
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय
कहत कबीर वा दास से, कैसे मन पतियाय
तन मन दिया आपना, निज मन ताके संग
कहत कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग
निज मन को नीचे किया, चरण कंवल की ठौर

कहे कबीर गुरुदेव बिनु , नज़र न आवे और

सालिकों के बीच में गुरु की यह हैसियत है। जो ऐसा नहीं समझता है वह मरा हुआ है। वह तौहीद को क्या ख़ाक समझेगा ? गुरु मिले, असली तौहीद का पैग़ाम(सन्देश) सुनने में आया और वह मुवाहिद (एक) बन गया। अब कहना सुनना झक मारना है। जिसको गुरु नहीं मिला वह तौहीद के कलमे (वचन) सुनकर गुमराह (पथभ्रष्ट) हो गया। 'अहंब्रह्मास्मि' और ' अनहलहक ' कहता रहता है और हक़ीक़त में न मुवाहिद है और न तौहीद का क़ायल। कहना ही कहना हाथ में है बाक़ी ख़ाली है । कबीर साहब कहते हैं :-

सतगुरु पूरा ना मिला, सुनी अधूरी सीख

स्वांग यती का पहन कर घर-घर मांगी भीख

इन्सान जिस तरफ दिल लगता है वैसी ही बातें उसमें पैदा हो जाती है। मसलन, फोटोग्राफर ने तस्बीर की तरफ़ दिल लगाया, फ़ोटो की खूबसूरती और उसकी असलियत दिल में पैदा हो गयी। मूर्ति बनाने वाले ने मूर्ति में दिल लगाया। मूर्ति के नक्शे-निगार (रूपरेखा) दिल में पैदा हो गए। नजूमी (ज्योतिषी) ने इल्म नजूम (ज्योतिष) में दिल लगाया। तमाम चाँद, सूरज व सितारे उसके दिल में जगमगा रहे हैं, और वह उनसे अलग कब है ? इसी तरह जिसने गुरु को दिल दिया, गुरु उसके अन्दर प्रगट हो गए और वह उनसे मिला हुआ वहदत के दरिया में तैर रहा है। गुरु तौहीद का मक़सद है और जो कुछ भी है गुरु है, बाक़ी और नही।

टिके भी कहाँ आकर ? अपने भीतर नूर (रौशनी) देखो । बाहर क्या धरा है ? जो कुछ है अपने अन्दर है। हर चीज़ अन्दर से बाहर आती है इसलिए तौहीद भी अन्दर है। उसे बाहर कभी नहीं ढूँढ़ना चाहिए क्योकि जितना निगाह को बहिर्मुखी बनाओगे उतनी ही तफ़रके (विरोध) ज़्यादा बढ़ेंगे। सब्रो-क़रार (संतोष व शांति) अपने ही दिल में मिलता है। ख़ुशी और इतमीनान की हालत भी अन्दर है। तौहीद हो चुकी। ज़्यादा नहीं तो उसकी कुछ मुराद (आशय) ज़रूर समझ में आ गयी होगी।

कायनात (दुनियाँ) में सबको मिल कर रहना तौहीद है। अगर दिल में दाखिल होने का मौक़ा मिल गया तो तौहीद का समझना आसान है। अगर दिल बेक़रार है तो मुश्किल से समझ आएगी।

सब का मजमुआ (एक साथ रहना) ज़ात-वाहिद (एक जात) कहलाता है। न वह कभी किसी से जुदा (अलग) हुआ और न किसी से मिला। वह जैसा है वैसा ही है। हाँ, अगर नुक़्स और क़सूर हो

सकता है तो इन्सान के ख़्यालों में हो सकता है क्योंकि वह जैसा सोचता है वैसा बनता है। एक आदमी पेड़ को देखता है, दूसरा उसको आदर्श समझता है, तीसरा उसको भूत ख्याल करता है। चीज़ जो थी अब भी है मगर ख़्याल से अलग -अलग नाम पैदा कर दिए। लालची को सीप में चाँदी, प्यासे को शराब में पानी, डरे हुए को रस्सी में साँप। किसी की आँख में बल होता है, यानी एक चीज़ में दो दिखाई देती है। यह गलतियाँ सिर्फ़ दिल के मैले होने के व ख़्यालात के नाक़िस (छोटा) होने के सबब से हुआ करती है। इसी तरह लोगों ने एक को अनेक मान लिया और वैसा ही कर रहे है। चूँकि ख्याल में दो समा गए इसलिए इन्सान द्वैतवादी और मुशरिक (दो के मानने वाला) हो गया है। यह ख़्याली बीमारी है जो सिर्फ़ वाहमा (ख़्याल) के पुख्ता करने से ठीक होगी। यही इसका इलाज है क्योंकि यह दोपना भी तो वाहमा ही के सबब से आया है, तौहीद को बुरे भले तरीक़े से जैसा हो सका समझा दिया।

----

(5) इस्तग़ना

अब पाँचवी मन्ज़िल जिसको सूफ़ी लोग इस्तग़ना, यती वैराग्य, योगी निर्विकल्प समाधि कहते हैं, आती है यह सारे शब्द मुश्किल हैं और गलतफ़हमी (भ्रम) फ़ैलाते है। आमतौर से इस्तग़ना के माने बेपरवाही के होते है। यह ठीक भी है। मगर ज़्यादा दौलत वाले लोगों को भी ग़नी कहा जा सकता है। तौहीद एक बड़ी दौलत है, जिसे यह मिल गयी वह ग़नी (मालदार) हो गया। मुहताज़ व निर्धन लोगों में बेपरवाही नहीं होती। ग़नी (धनवान) में होती है। इसलिए दौलत का घनापन इस्तग़ना कहलाता है। वैराग्य के मानी हैं 'राग' का न होना। मगर वह अदम (न होना) नहीं है न उसका अभाव है। राग का घनापन हो जाना वैराग्य है क्योंकि उसी हालत में आकर इन्सान तर्क व त्याग के मज़मून को समझता है। त्याग किस चीज़ का करना है ? माना, घर छोड़ा, स्त्री छोड़ी, जँगल में आयो यहाँ भी घर है और यहाँ भी वही माया साथ रहती है। इसलिए जब तक राग (आसक्ति) का घनापन न हो जाय तब तक वैराग्य नहीं होता। राग का घना होना ही सच्चा वैराग्य है। जब तक यह कमज़ोरी है तब तक कुछ न होगा।

तौहीद के राग का ख़्याल पकाया गया। उसमें पुख़्तगी आ गयी। वही वैराग्य हो गया और अब उसमें त्याग व तर्क है। त्याग व तर्क भी नाम है ख़्याल और बहानों की ऊँची तरक़्क़ी का। जब तक आदमी कमज़ोर है तब तक जिस्म की कमज़ोरी उसको सताती है। वह इलाज कराता है और ताक़त देने वाले खाने खाता है और जिस्म का ख्याल रखता है। मगर जब वह मज़बूत और ताक़तवर हो गया, कमज़ोरी जाती रही तो उसको यह मालूम भी नहीं होता कि उसके जिस्म भी है या नही। पहले यह जिस्म बोझा मालूम होता था अब उसकी हालत कुछ और ही है और उसकी तरफ से वह बेपरवाह है। यही निर्विकल्प समाधि है जिसकी शुरुआत सविकल्प समाधि से होती है । योगी सिर्फ उस वक्त तक योगी है जब तक संयम करता हुआ किसी मक़सद (ध्येय) से मिला है और योग की तमन्ना रखता है। इस तमन्ना के घने होते ही वह और कुछ बन जाता है। ऐसा मालूम होता है कि अब उसमें तमन्ना व योग नहीं रहा। इसी हालत को निर्विकल्प कहते है। जब तक हबिस है, दोपना है। हबिस को पक्का हो जाने दो। जब सेरी (तृप्ति) आ गयी, ख्वाहिश जाती रही। यही इस्तग़ना है और कुछ नही।

इसी इस्तग़ना को संतमत में 'महासुन्न' कहा जाता है। इस मुक़ाम या हालत पर पहुँचे हुए लोग हँस या परमहँस कहलाते है। जिनमें इस्तग़ना है वे सच्चे मानी में तारकुल दुनियाँ (त्यागी) है। यूं

तो आम आदमी की निगाहों में वे अब भी दुनियाँ में हैं मगर जिनकी नज़र बारीक है उनको दुनियाँ की तरफ़ से बेपरवाही दीखती है।

सर बिरहना नेस्तम दारम, कुलाहे चार तर्क

तर्क दुनिया, तर्क उक़्बा, तर्क मौला, तर्के तर्क

अर्थ - मेरा सर नंगा नहीं है, वह चार त्याग की टोपियों से ढँका हुआ है। पहले सँसार का त्याग, फिर परलोक का त्याग, फिर ईश्वर का त्याग और फिर त्याग करने के विचार का भी त्याग।

कौन कहता है कि दुनियाँ को छोड़ो। क्या पकड़ोगे और क्या छोड़ोगे ? असल में द्वैतबाद की जगह में रहते हुए न गृहस्थ आ सकता है न त्याग, सिर्फ़ दिल की हालत का बदलना है कि न उसे किसी से प्रेम हो और न किसी से द्वेष, और यही सच्चा वैराग्य है।

मूड मुड़ाये क्या हुआ, किया जो घोटम घोट

मनुवा को मूड़ा नहीं, जा में सारी खोट

तौहीद की मन्ज़िल तय करने पर जब इस्तग़ना आ गयी तब उस जगह पहुँचे हुए की रूह (आत्मा) खुश हो गयी। सारे रगड़े झगड़े दूर हो गये और वे मस्ती में आकर गाने लगे :-

सन्तों सहज समाधि भली

गुरु प्रताप भयो जा दिन से, सुरत न अन्त चली

आँख न मूँदूँ, कान न रूदूँ, काया कष्ट न धारूँ

खुले नयन में हँस हँस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं

कहूँ सो नाम, सुनूं सोई सुमिरन, खाऊँ पिऊँ सो, पूजा

गिरहन त्याग एक सम लेखूं, भाव मिटाऊँ दूजा

जहाँ जहाँ जाऊँ सोइ परिक्रमा, जो कुछ करूँ सो सेवा

जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा

शब्द निरन्तर मनुबा अनुरत मलिन वासना त्यागी

उठत बैठत कबहुँ न बिसरे ऐसी तारी लागी
कहे कबीर सो उनमन रहनी सो प्रगट कर गाई
दुःख सुख के एक परम् सुख, तेहि सुख रहा समाई।

मतलब यह है कि संत सहज समाधि भली है। जिस दिन से नेह हुआ है उस दिन से आत्मा गुमराह नहीं हुई है। न आँखों को बन्द करता हूँ , न शरीर को कष्ट देकर तपस्या करता हूँ। आँखे खुली हुई हैं और मैं हँस- हँस कर ख़ूबसूरत चेहरे का दर्शन करता हूँ। जो मेरे मुँह से निकलता है, वही नाम है, जो कुछ सुनता हूँ, वही सुमिरण है, जो खाता या पीता हूँ वही प्रसाद है। मेरी निगाह में ताल्लुक़ और बेताल्लुकी एक जैसी है। द्वेष का ख्याल दिल से भगा दिया है। जहाँ -जहाँ जाता हूँ वही तवाफ़ (परिक्रमा) है। मेरा सोना या लेट जाना सिज़दा व बन्दगी है। अब और किसी देवता की पूजा नहीं करता। दिन रात अंतरी धुन में मस्त हूँ। ख़राब ख़्यालात आप से आप दूर भाग गये। ऐसी मस्ती की समाधि की ताड़ी लगी हुई है। कबीर साहब फरमाते हैं यही उनमनी अवस्था है। मैंने खुले शब्दों में यह गीत गाकर सुनाया है। दुःख सुख के परे एक और बड़े सुख की हालत है। मैं उसी में मस्त रहता हूँ। ऐसे लोगों के नज़दीक क़ैद व बन्द एक जैसे है। न बुरे न भले।

---

(६) फ़ना (लय)

पांच मंज़िलें पूरी हो चुकी। अब छटी कहते है। फना (भंवर गुफा) को भी साफ़ तरीके से मगर मुख़्तसिर (सूक्ष्म) तौर पर बयान करते हैं जिनसे उलझन पैदा होगी। घबराना नही। आम लोग फ़ना को अदम (नेस्ती-मिट जाना) कहते है। वे करें भी क्या ? असल मतलब को समझ भी नहीं सकते। दुनियाँ में हस्ती तो है मगर नेस्ती का पता नही। जो है सो है। इससे ज़्यादा कहना बेकार है। अदम और फ़ना के मानी लुग़त (डिक्शनरी) या सूफ़ी लोग चाहे कुछ समझावें, मगर वह एक हालत का नाम है जिसमें ज़ाहिर होने की सूरत नहीं है। है ज़रूर मगर इशारा ही इशारा है। इसलिए मिसाल से मदद लेनी पड़ती है। मसलन ज्योतिषी ने सूर्य, चाँद, सितारों को देखा। नज़र बाहर की तरफ़ से मुड़ी व दिल में आकर बैठ गयी और अब दिल में वे नूरानी कुरे (प्रकाशित पटल) रोशन है क्योकि वे भीतर ही से निकलकर बाहर जा खड़े हुए थे। उसने ग़ौर करना शुरू किया। नज़्ज़ारे बदलते गए। आखिर में दिल की हरकत भी बंद हो गयी और महवियत (बेहोशी की हालत) में चला गया जहाँ कुछ भी नहीं है। जागते समय हज़ारों सूरतें नज़र आती थी। अब आँख बंद हुई। स्वप्न में वही तमाशे नज़र आने लगे क्योकि जागने के समय हमारे दिल में से ही बाहर आये थे। अब गहरी नींद आ गयी। पर्दा पड़ गया, अब क्या है ? जबाब मिलेगा ' कुछ नहीं '। मगर वह क्या कुछ भी नहीं है ? है तो ज़रूर, होने में शक नही। मगर नज़र नहीं आता। नज़र कैसे आवे ? आँखें बंद हैं, पपोटे बंद हैं, दिल बंद, कोई देखे भी तो किससे देखे व क्या देखे ? इसी का नाम अदम व फ़ना है और इसी को नेस्ती कहते है।

शुरू में इस जगह रूह का उतार हुआ, इसमें एक था, नीचे उतर कर अनेक होता गया। क्या इस कोई समझ नहीं सकता ? गहरी नींद में स्वप्न में उतर कर तब फिर जागृति में आते हैं और फिर जागृति से लौट कर स्वप्न में जाकर गहरी नींद में सो रहते है। यह रोज़ाना का व्यवहार है। सोचिये यह ग़लत है या सही। यही जागना, स्वप्न और गहरी नींद असल में अजल (उत्पत्ति) बरज़ख़ (स्थित) और अदम (लय) है। यही श्रष्टि स्थित व प्रलय है। यही दुनियां, उकवा और अदम है, यही ब्रह्मा, विष्णु व महेश की असली सूरतें है। यही रूहुलकुद्स बाप और बेटे है। यह सत-चित-आनंद है। इनको समझ लिया तो सब कुछ समझ लिया। अगर इनको नहीं समझा तो कुछ नहीं समझा। दुनियाँ का इल्म हुआ तो क्या हुआ ? यह इल्मी हालत बेदारी (जागने) का इल्म है जो बिलकुल महदूद (सीमित) व नाक़िस (तुच्छ) व ग़ैर-मुक़म्मिल (अधूरा) है।

तीन चीज़ें होती है :-

(१) देखने वाला,

(२) जिसको देखा जाता है, और

(३) देखने की शक्ति जो देखती है।

फ़नाइयत (लय अवस्था) में देखने वाला मौजूद रहता है और जिसको देख रहा है वह भी मौजूद है। मगर जिससे देखा जाता है (ज्ञान शक्ति) वहाँ पर जाकर वह चीज़ पीछे रह जाती है और कुछ अनुभव नहीं करती है। ज्ञान शक्ति का अभाव रहता है इसलिए कुछ दीखता नही। इसी को ' अदम ' (फ़ना) कहते है।

फ़ना नेस्ती (मिट जाना) को नहीं कहते। यह रूह (आत्मा) की एक हालत का नाम है जिसे संतों ने उन्मनी अवस्था कहा है। पुराने बुज़र्गों को और लफ्ज़ (शब्द) मिले ही नही। इससे फ़ना नाम रखा गया। वे बेचारे करते भी क्या ? मगर उनका मतलब नेस्त होना (मिट जाना) नहीं है।

अगर पांच मंज़िलें तै कर लीं तो अब फ़ना की मंज़िल पर आकर आराम नसीब होगा।

----

(7) बक़ा (पुनर्जीवन)

*इसके बाद **सातवीं मन्ज़िल बक़ा** की है। जैसे फ़ना का समझना मुश्किल था वैसे ही बक़ा का समझना भी सहल नहीं है।*

'फ़ानी ' के मानी हैं ' तब्दीली होने वाली हालत'। 'बक़ा' के मानी हैं 'बाक़ी', 'जो तब्दील न हो' ' जो न मरे न खपे' वही बाक़ी है। वह न कमाल (पूर्णता) है न ज़बाल (नीचे गिराब) है, न हस्ती है न नेस्ती, न ख़ुदा (ख़ुद आया हुआ) न किसी का लाया हुआ। जिसके सहारे दुनियां के तमाम तमाशे हो रहे हैं और होंगे उसी का नाम बक़ा है। इस आधार या सहारे का कोई नाम नहीं और सब नाम उसी के है। नाम न होते हुए वह नामी ग्रामी है। काम न करता हुआ वह कर्ता है। बग़ैर ज़बान के वह बोलता है। मतलब का ताला बग़ैर कुंजी के खोलता है। वही सबका शुरू, वही सबका आख़ीर है। भला यह किस तरह है ? उसकी किरणों का समुन्द्र, दरिया (नदी) नाले वग़ैरा में अक्स पड़ा। यह इन्तहा (आख़ीर) है। मगर इसका समझना बहुत कठिन है। यहाँ पर फरिश्तों (देवताओं) का भी गुज़र (पहुँच) नहीं। अगर थोड़ा बहुत भी समझ सकता है तो इन्सान (मनुष्य) ही समझ सकता है। यह हक़ीक़त (सत्य) है और हक़ (सत्य) है और इसी का नाम बक़ा (जो बाक़ी न रहे) है जो न कभी मरता है न पैदा होता है, वही सत्य है और सत्य-नाम है।

बीज से फल तक और फल से बीज तक - इसके सिवा और क्या है ? बीच की हालतों में यदि कोई शाख, तना, फूल के बीच अटकता है तो उसको यानी असल को नहीं देख सकेगा। वह हमेशा नज़र से ग़ायब रहेगा। जब फ़ना हुए अपनी छोटी सी नाक़िस और महदूद (सीमित) हस्ती को जबाब वह दे बैठे। वह सामने आयेगा और देखो अब तुम नहीं हो, वह ही वह है।

ख्वाव (सोना) बेदारी (जागना) और गहरी नींद - तीनों हालतें फ़ानी (नाशवान) है। कभी जागना कभी सोना। कभी गहरी नींद में होशो- हबास खोना है। ये सब रोज़ बदलते रहते हैं क्योंकि बदलना इनका काम है। मगर तुम वही हो जो पहले थे। तुम नहीं बदले, गो तुम इनमें होते हुए कहे जा सकते हो मगर तुम यह तो नहीं हो। क्या इनसे तुम्हें अपनी हस्ती नज़र नहीं आती ? अगर नज़र नहीं आती तो अफ़सोस की बात है। जिस्म पैदा हुआ, बढ़कर जवान हुआ, बूढ़ा हुआ, मर गया। ये तमाशे तुम्हारे ही आधार पर तो होते रहते है। तुम न कभी पैदा हुए, न कभी मरे, न कभी बालिग़ थे, न बूढ़े थे। यह औसाफ़ (मरना-जीना) सिर्फ जिस्म के है। अगर अपनी ज़ात (व्यक्तित्व) को समझ लो। थोड़ी सी

देर के लिए इस सिफ़त को छोड़ दो तो यह मुअम्मा (समस्या) आसानी से हल हो जाएगा। जब तक सिफ़ात (गुण) में अटके हो तब तक रसाई होना मुहाल है क्योंकि सिफ़ात में नुक़्स (दोष) महदूदियत (सिमित होने का) है।

इल्म व अक्ल, ज्ञान व ध्यान सब फ़ानी (नाशवान) है। इन्सान कभी जाहिल (मूर्ख) है, कभी आक़िल (बुद्धिमान), कभी नाक़िस (मूढ़) कभी कामिल (पूर्ण) ।कभी आमिल (अभ्यासी) कभी आलिम (विद्वान)। अक्ल गयी दीवानगी आयी, सेहत गयी बीमारी आ गयी मगर जात (जाति) तो जैसी थी वैसी ही है। उसको क्या सदमा पहुँचा ? मगर तुम तो सिफ़ात (गुण) के ज़र-ख़रीद (मोल लिया हुआ) ग़ुलाम हो गए। नाम की हविस, इज़्ज़त व दौलत की हविस, नमूद (दिखावा) और शोहरत की हविस, जब तक ये हैं वो नहीं है, क्योंकि नज़र इनमें जमी है। जो निगाह के सामने है वह नज़र नहीं आता। निगाह को बदल दो। अपने अन्दर तलाश करो। जब तक नीचे की तरफ़ रागिब हो ऊपर नहीं देखते और जब ऊपर देखने लगे तो वही वह है और उसके सिवाय यहाँ दूसरा है कौन ?

नादान कहते हैं कि बूँद दरिया (नदी) में गिरी, दरिया हो गयी। कहाँ की बूँद कहाँ का दरिया हो गयी। कहाँ का गिरना और कहाँ का पड़ना ? तुम न बूँद हो न दरिया। यह निस्बती (तुलनात्मक) हालतें है। निस्बत (तुलना) जुज़बियात (आंशिकता) में है। जो असल को देखने वाले हैं उनको जुज़ (अंश) से क्या काम ? अगर वह बूँद हैं तो तुम दरिया हो।

साफ़- साफ़ कहा जाय तो झगड़ा मचता है। सूफ़ी अलग नाराज़। पन्थाई और सलूक वाले अलग खफ़ा। अगर वह हमसे जुदा (भिन्न) था या है तो बाहर क्यों नहीं तलाश की जाती ? क्यों लोग अन्दर तलाश करने की हिदायत (आदेश) करते हैं? क्यों यह नहीं कहा जाता कि जबरूत, लाहूत, नासूत सब तुम्हारे भीतर हैं, राह भी अपने अन्दर बताई जाती है। अगर खोल कर साफ़ साफ़ कहा जाता है तो लोगों के माथे पर नाहक सिलवटें पड़ती है। **एक सूफ़ी का कलाम** (वचन) है :-

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब ब बन्द

गर न बीनी सिर्रे हक़ बर मन ब बन्द

अर्थ :- आँख को बन्द करो, कान को बन्द करो, और होंटो को बन्द कर लो, और इस पर भी असलियत न खुले तो मुझ पर हंसना ।

गुरु नानक साहब कहते हैं :-

तीन बन्द लगाय कर, सुन अन्दर टंकोर
नानक सुन्न समाधि नहीं साँझ नहीं भोर

अगर नाक, कान, आँख बन्द करने से वह नहीं मिलता है तो कहाँ मिलता है, बाहर या भीतर? अगर वह भीतर से मिलता है तो ज़ाहिर है कि वह हमारे अन्दर हमेशा से था और हम वही हैं जो पहले थे। हाथ को घुमा कर क्यों नाक पकड़ी जाय ? सीधे क्यों न पकड़ी जाय ताकि यह झगड़ा हमेशा के लिए दूर हो जाय। मगर यार लोग कहते हैं कि इससे दुनिया में गुमराही (पथभ्रष्टता) फैलेगी। मालूम होता है कि आप दुनियाँ के ठेकेदार बन कर आये हैं ? काज़ी जी क्यों दुबले, शहर के अन्देशे से। इसके लिए पहले ही से कहा गया है कि वगैर इश्क़ के मार्फ़त नहीं, वगैर मार्फ़त के तौहीद नहीं, वगैर तौहीद के इस्तगना नहीं, वगैर इस्तगना के फ़ना नहीं, वगैर फ़ना के बक़ा नही। यह तो नहीं कहा जाता कि यूँही बड़बड़ाते रहो। जिस इन्सान के दिल के परदे चाक हो गए हैं, या हो रहे हैं उसी के लिए यह पैग़ाम (सन्देश) है। पैग़ाम इन्सान के लिए ही होते है। अगर तुम इन्सान हो तो मरहलों (समस्याओं) से गुज़रना पड़ेगा, अगर इन्सान नहीं हो तो अल्लाह-बाक़ी हविस। तुम अपना काम करो, हम अपना काम करें। मगर हमारी ज़बान को क्यों रोकते हो और बंद करते हो ? खुलकर खेलने क्यों नहीं देते ?

वह क्या था, क्या है - न कभी जाना गया और न जाना जा सकेगा। पैदायश के सिलसिले में वह शुरू से एक था। एक से दो हुआ, दो से तीन, तीन से बेशुमार (अनन्त) और फिर कायनात (दुनियाँ) में फ़ैल गया। और जब सिलसिला ख़त्म होगा बेशुमार (अनन्त) से तीन, तीन से दो, दो से एक होगा। मगर यहाँ पर कौन बिगड़ा और कौन सुधरा ? बिगड़ने वाले बिगड़े बनने वाले बने। मगर वह जैसा था वैसा ही रहा। उसमें तब्दीली नहीं आयी। इसी को बक़ा (पुनर्जीविन) कहते है। सब मिट जाते हैं, वह अमिट है, वही बाक़ी है और वही तुम्हारी ज़ात (असल) है। इसकी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं मगर तबालत (उलझन) होगी। समुन्द्र में लहरें उठती है। उठी और उठ कर बैठ गयी। अब उनका कहीं नामोनिशान (चिन्ह) नहीं नहीं रहा। सूरज चमक रहा है, बेशुमार घड़ों में उसका अक्स पड़ रहा है। जो घड़ों को देखते हैं उनको एक ही सूरज हज़ारों जगह नज़र आ रहा है और जो,ऊपर देखते हैं उनको एक ही सूरज नज़र आ रहा है। तमाम अक्स भिन्न भिन्न घड़ों में उसी एक सूरज के तो है। उस एक सूरज के अलावा यहाँ है कौन ?

आख़िर यह है क्या ? कुछ समझ नहीं आता। समझ में आये कैसे ? नज़र कोताहबीन (कम देखना) व गैरियतबीन है। किसी ने रस्सी देखी, उसको साँप समझा, वह साँप हो गया। वह काटने दौड़ता है। जब देखने वाले का दिल शान्त हो गया, अब वह रस्सी है, साँप नही। साँप रस्सी के आधार पर पैदा हुआ था, इसी तरह यह संसार है। लालची आदमी ने सीप देखी, उसको चाँदी का भ्रम हो गया, जब उसको उठाया, दिल ठिकाने आया, चाँदी गायब।

सवाल फिर भी वही रहा। दिल कैसे बिगड़ा ? जबाब यह है कि नज़र (दृष्टि) जुज़बियात (अंशों) की तरफ गयी। नज़र को एक पहलू पर जमा दो। दूसरे पहलू आप ही गायब हो जावेंगे। जुज़बियात (अंशों) से हटकर कुल (सम्पूर्ण) की तरफ चले जाओ। इसी तरह ज्ञान व अज्ञान के तमाशे होते रहते हैं और जब यह दोनों ओझल हो जाते हैं तब वही एक रह जाता है। बात मुश्किल है, कोई कहे तो कैसे ? जब तक हम ख़ुदी (स्वार्थ) व अनानियत (अहंभाव) के पंजे में फंसे हुए हैं तब तक मौत के मुंह में हैं क्योकि अनानियत (अहंभाव) के पहलू हर समय बदलते रहते हैं और यही बदलना मौत है।

समुन्द्र में क्या चीज़ घटी या बढ़ती है ? लहरें या समुन्द्र ? लहरों के लिए कहा जा सकता है मगर समुन्द्र को क्या ख़तरा, वह तो जैसा था वैसा ही है। इसी का नाम बक़ा है।

इसी तरह हक़ीक़त (सत्यता) के दरिया (नदी) में जब मौजें उठती हैं उस समय जुज़्बी (आँशिक) निगाह बनाकर हैवान(पशु), इन्सान (मनुष्य) फ़रिश्ते (देवता), सूर्य, चाँद , सितारे, सब कुछ देख लो सुन लो। यह आते- जाते, मरते- खपते,

बनते -बिगड़ते रहते है। मगर जब कुल (सम्पूर्ण) की तरफ नज़र जाएगी, जुज़बियात (अंशों) का तमाशा ग़ायब हो जायेगा और फिर कुल का ख़्याल भी जाता रहेगा। यही बक़ा है और इसको मौत का ख़तरा नहीं है क्योकि मौत जुज़ (अंश) में है, कुल सम्पूर्ण में नहीं अगर नज़र वसीह (विशाल दृष्टि) के साथ कुल को समझ लिया है।

जुज़ (अंश) और कुल (सम्पूर्ण) दोनों की गुंजायश सिर्फ़ तुम्हारे अपने ख़्याल में है और यह निसबती (तुलनात्मक) बातें भी अनानियत (अहंपने) से गढ़ी गयी है। इनका तर्क (छोड़ना) बक़ा है क्योकि बक़ा में निसबती (तुलनात्मक) हालतें नहीं है। हमारी असली मुराद (मंशा) के लिए बक़ा का शब्द काफ़ी नहीं है और अगर दूसरा लफ्ज़ (शब्द) गढ़ा जाय तो व भी ऐसा ही होगा क्योंकि यह सब जुज़बी (आंशिक) है।

अब फिर शुरु से आखिर तक की मन्ज़िलों को याद करने के लिए इशारे दिए जा रहे है।

हममें तलब (इच्छा) पैदा हुई, इश्क़ (प्रेम) आया। इश्क़ से इर्फान (ज्ञान) पैदा हुआ फिर तौहीद (एकभाव) और वहदानियत (एकपने) का ख्याल हमारे दिल के अन्दर ही पैदा हुआ। फिर इसमें इस्तगना (उपराम) भी आयी। उसी में फ़ना (लय) भी हुए और उसी से बक़ा (पुनर्जीवन) में क़ायम (स्थित) हुए। बाहर से कुछ किया न धरा। कुछ न था और न होगा, सब में है। मगर इस ' अहं ' को न कहना चाहिए बल्कि चुपचाप रहना चाहिए नहीं तो ग़लत फहमी (भ्रम) होगी। कहने को बस इतना ही काफ़ी है जो है वह है।

कबीर साहब कहते हैं :-

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार
जैसा है वैसा रहे कहे कबीर विचार

यही बक़ा है, यही सत्य है, सत्य नाम है, सत्य लोक है।

संतमत के उसूलों (सिद्धांतों) से जो ग़लतफहमी (भ्रम) फैली हुई है उसको दूर करने के लिए और जो रुहानियत (आध्यात्म) के शौक़ीन हैं इनको फ़ायदा पहुँचाने की गरज़ (उद्देश्य) से यह लेख लिखा गया। जो लोग फ़ायदा उठा सकेंगे तो समझा जायेगा महनत ठिकाने लगी। फिर बड़े -बड़े ग्रन्थ देखने की ज़रुरत नहीं रहेगी। मगर किसको ज़रुरत नहीं रहेगी? जो तसव्वुफ़ पसन्द(संतमत) को मानने वाले है।

फनाइयत (लय अवस्था) तीन होती हैं :-

(1) **फ़नाफ़िल शेख** (गुरु में लय होना)

(2) **फ़नाफ़िल रसूल** (अवतार में लय होना)

(3) **फ़नाफ़िल अल्लाह** (परमेश्वर में लय होना)

बग़ैर गुरु में फ़नाइयत हासिल किये (लय हुए) हुए रसूल (अवतार) और परमात्मा में फ़नाइयत (लय) नहीं हो सकती।

गुरुदेव कल्याण करें और समझने की तौफ़ीक़ दें।
